Registration No. V-36244/2008-09 **ISSN :- 2348-0076**

JIFE Impact Factor – 5.21

Samajiki Sandarsh

A Multidisciplinary Quarterly International Peer Reviewed Referred Research Journal

Editor
Dr. Kamlesh Kumar Singh
Assistant Professor
Department of Sociology
Pt. D.D.U. Govt. Girls P.G. College
Sevapuri, Varanasi

Volume - XIII **No. - 1** **(Jan. – Mar. 2025)**

(Part – II)

Published by
Future Fact Society
Varanasi (U.P.) India

Samajiki Sandarsh - *A Refereed Journal, Published by : Quarterly*

Correspondence Address :
B 31/13-6, Malviya Kunj
(Behind Khaneja Watch Co.)
Lanka, Varanasi, (U.P.)
Pin. - 221 005
Mobile No. :- 09336924396
Email- samajikisandarsh@gmail.com

Note :-

The views expressed in the journal "Samajiki Sandarsh" are not necessarily the views of editorial board or publisher. Neither any member of the editorial board nor publisher can in anyway be held responsible for the views and authenticity of the articles, reports or research findings. All disputes are subject to Varanasi (Uttar Pradesh) Jurisdiction only.

Managing Editor
Avinash Kumar Gupta

©Publisher

ISSN : 2348-0076

Printed by
Interface Computer, B 31/13-6, Malviya Kunj, Lanka, Varanasi-221005 (U.P.)

ADVISORY BOARD

- **Prof. T. N. Singh,** United Nations Professor of Plant Physiology, Department of Plant Sciences, University of Gondar, Ethiopia (Africa)
- **Prof. Sarswati Singh**, Department of Sanskrit, Faculty of Arts, Banaras Hindu University, Varanasi
- **Dr. Diwakar Pradhan,** Professor in Nepali, Head, Deptt. of Indian Languages Faculty of Arts, Banaras Hindu University, Varanasi
- **Prof. S.K. Bhatnagar,** School for Legal Studies, BBAU, Lucknow
- **Prof. Suresh Prasad Rai,** Former-Head, Department of English, S.Sinha College Aurangabad, Bihar
- **Left. Dr. Munna Singh,** Head, Physical Education Department, Handia P.G. College, Handia, Allahabad, U.P.
- **Dr. Bindeshwar Prasad Mandal,** Head, Department of Sociology, B.N. College, Patna University, Patna (Bihar)
- **Dr. Achchelal Yadav,** Head, Physical Education Department, PDU Rajkiya P.G.College, Saidpur, Ghazipur, U.P.

EDITORIAL BOARD

- **Dr. Sanjay Singh,** Department of Plant Science, University of Gondar, Ethiopia (Africa)
- **Dr. Diwakar Pradhan,** Professor in Nepali, Head, Deptt. of Indian Languages Faculty of Arts, Banaras Hindu University, Varanasi
- **Dr. Nagendra Kumar Singh,** Professor, Department of Journalism & Mass Communication, Mahatma Gandhi Kashi Vidyapith, Varanasi.
- **Dr. Manish Arora,** Associate Professor, Faculty of Visual Arts, Banaras Hindu University, Varanasi
- **Dr. Somu Singh,** Assistant Professor, Faculty of Education, Banaras Hindu University, Varanasi
- **Dr. Surjoday Bhattacharya,** Assistant Professor, Government Degree College, Pratapgarh U P
- **Dr. Upasana Ray,** Associate Professor, National Council of Educational Research and Training, New Delhi
- **Dr. Krishna Kant Tripathi,** Assistant Professor, Deptt. of Education, Central University of Mijoram, Mijoram
- **Dr. Urjaswita Singh,** Assistant Professor, Department of Economics, M.G. Kashi Vidyapith, Varanasi.
- **Dr. Santosh Kumar Singh,** Assistant Professor, P.G. Department of Psychology, J.P. University. Chapra
- **Dr. Ramkirti Singh,** Assistant Professor, Department of Psychology, Gorakhpur University, Gorakhpur

- **Dr. Girish Kumar Tiwari,** Assistant Professor, National Council of Educational Research and Training, New Delhi
- **Dr. Ranjeet Kumar Ranjan,** Assistant Professor, Department of Psychology, J.P. College, Narayanpur, Bihar
- **Dr. Paromita Chaubey,** Faculty of Education, Banaras Hindu University, Varanasi

☙❧

EDITOR'S NOTE

It is a great honour to me to extend my warm greetings and welcome you all to the journal, **Samajiki Sandarsh,** a refereed journal of multi disciplinary research. The journal, which is a peer-reviewed, will devote to the promotion of multi-disciplinary research and explorations to the South Asian and global community. It is our objective to provide a platform for the publication of new scholarly articles in the rapidly growing field of various disciplines. We are trying to encourage new research scholars and post graduate students by publishing their papers so that they may learn and participate in literary publishing through a professional internship. Scholarly and unpublished research articles, essays and interviews are invited from scholars, faculty researchers, writers, professors from all over the world.

Note: All outlook and perspectives articulated and revealed in our peer refereed journal are individual responsibility of the author concerned. Neither the editors nor publisher can be held responsible for them anyhow. Plagiarism will not be allowed at any level. All disputes are subject to Varanasi (Uttar Pradesh) Jurisdiction only.

Hoping all of you shall enjoy our endeavors and those of our contributors.

Editor

CONTENTS

"Samajiki Sandarsh"

➲	नई शिक्षा नीति में व्यक्तित्व विकास एवं चरित्र निर्माण ***डॉ. सुरेन्द्र कुमार यादव***	01-03
➲	राष्ट्रनिर्माण में महिलाओं का योगदान और सशक्तिकरण ***डॉ. मोहम्मद परवेज***	04-08
➲	संचार साधनों का गया (बिहार) के शहरी एवं ग्रामीण विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धियों पर प्रभाव ***डॉ. अंजली***	09-12
➲	रघुवीर सहाय और नई कविता की दृष्टि ***मनीष कुमार सिंह***	13-17
➲	जैन पुराणों में शिक्षा की महत्ता एवं उपादेयता ***काजल गिरि***	18-22
➲	उच्च प्राथमिक स्तर पर विद्यार्थियों द्वारा की जाने वाली कुसंक्रियाएँ : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन ***डॉ. रोबिना***	23-28
➲	ग्रामीण परिवेश में बच्चों में बाल्यावस्था में आहार एवं पोषण सम्बन्धी जागरूकता का अध्ययन ***डॉ. जुग्नू कुमार***	29-31
➲	ग्रामीण भारत में शिक्षा में सुधार समाधान और चुनौतियाँ ***डॉ. शम्भु कुमार शर्मा***	32-34
➲	चेरो जनजाति का सामाजिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन ***अंजली कुमारी***	35-40
➲	बौद्ध साहित्य में प्रतिबिम्बित काशी के उद्योग और व्यापार ***डॉ. स्वस्तिक सिंह***	41-44
➲	विजय दशमी पर्व का महत्व ***प्रो. सरिता सिंह***	45-47
➲	वेदों में नारी के अधिकारों का विश्लेषण ***डॉ. रजनीकांत राय***	48-50

नई शिक्षा नीति में व्यक्तित्व विकास एवं चरित्र निर्माण

डॉ. सुरेन्द्र कुमार यादव*

सारांश-

किसी भी राष्ट्र के सर्वांगिण विकास में उच्च शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान है, शिक्षा किसी भी समाज और राष्ट्र की रीढ होती है, जिसके आधार पर उस समाज और राष्ट्र का चहुमुखी विकास आकार पाता है। समय के साथ होने वाले शास्वत परिवर्तन आवश्यकता महसूस कराते हैं, कि शिक्षा में भी परिवर्तन लाया जाए। इन्हीं परिवर्तनों के चलते 1986 की शिक्षा नीति में सुधार करने के लिए हमारे देश में नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 लाई गई। इस राष्ट्रीय शिक्षा नीति में सभी के लिए समावेशी और समान गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा सुनिश्चित करने को लक्षित किया गया है। गुणवत्ता पूर्ण शिक्षण की संरचना के रूप में राष्ट्रीय शिक्षा नीति के द्वारा विद्यार्थियों का व्यक्तित्व विकास एवं उनका चरित्र निर्माण किया जा सके। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का एक प्रमुख लक्ष्य विद्यार्थियों का चरित्र निर्माण भी है, ताकि विद्यार्थियों के जीवन के सभी पक्षों और क्षमताओं का संतुलित विकास हो सकें। भारतीय चिंतन परम्परा में चरित्र निर्माण और समग्र व्यक्तित्व विकास शिक्षा का महत्वपूर्ण लक्ष्य माना जाता है। वर्तमान युग में चरित्र निर्माण और समग्र व्यक्तित्व विकास की जरूरत और बढ़ जाती है। इस नीति का उद्देश्य ऐसे नागरिकों का निर्माण करना है जो विचारों से कार्य व्यवहार से एवं बौद्धिकता से भारतीय बनें।

निर्माणों के पावन युग में, हम चरित्र निर्माण न भूलें ।
स्वार्थ साधना की आंधी में, वसुधा का कल्याण न भूलें।।

मुख्य शब्दः- उच्चशिक्षा, चरित्रनिर्माण , व्यक्तित्व विकास , नई शिक्षा नीति, नैतिक शिक्षा, राष्ट्र उत्थान।

सद्विचार और सत्कर्मों की एकरूपता है चरित्र:

जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में यदि आप किसी को प्रभावित करना चाहते है तो आपाको बेहतर प्रदर्शन करना होगा, इसके लिए आपको किसी को भी आकर्षित करने की कला आनी चाहिए। यही तभी संभव है जब आप के अन्दर श्रेष्ठ गुणों का समावेश हो। यह श्रेष्ठ गुण है संतुलित एवं सुन्दर शरीर, उत्तम विचार और आत्मविश्वास सद्विचारों और सत्कर्मों की एक रूपता की चरित्र है। चरित्र शब्द मनुष्य के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को प्रकट करता है। अपने को पहचानों शब्द का वही अर्थ है जो अपने चरित्र को पहचानों का है। हमारा चरित्र ही हमारे अध्यात्मिक विकास का आईना होता है, जो हमें अध्यात्म से जोड कर अवगत कराता है। व्यक्तित्व का सम्पर्ण स्वभाव अथवा चरित्र ही व्यक्तित्व कहलाता है।

व्यक्तित्व के पांच बडे लक्षण है।

1. बर्हिमुखता
2. सहमतता
3. खुलापन
4. कर्तव्यनिष्ठा
5. विक्षिप्तता

बर्हिमुखता समाजिकता है, सहमतता दयालुता है, खुलापन रचनात्मकता और साजिश है, कर्तव्यनिष्ठा विचारशीलता है, और विक्षिप्तता में अक्सर उदासी भावनात्मक अस्थिरता शामिल होती है। नई शिक्षा नीति के माध्यम से हमें विद्यार्थियों के व्यक्तित्व विकास को बढाने के लिए जिससे उनका चरित्र निर्माण हो सके ये पांच लक्षणों को विद्यार्थियों के जीवन में हमेंशा प्रोत्साहन द्वारा या ज्ञान द्वारा उनको सम्पोषित किया जाना चाहिए, जिससे उनके चरित्र का निर्माण हो सके और राष्ट्र के उत्थान में अपना सहयोग प्रदान कर सकें।

भारत के पूर्व **राष्ट्रपति डॉ शंकरदयाल शर्मा** ने कहा था- किसी शिक्षित चरित्रहीन व्यक्ति की अपेक्षा एक अशिक्षित चरित्रवान व्यक्ति समाज के लिए अधिक उपयोगी होता है। तात्पर्य यह है कि जीवन के समस्त गुणों एश्वर्यों, समृद्धियों और वैभवों की आधारशिला सदाचार है सच्चरित्रता है।

शिक्षा का शाब्दिक अर्थ होता है, सीखने एवं सिखाने की क्रिया, परन्तु अगर व्यापक अर्थ को देखें तो शिक्षा किसी भी समाज में निरंतर चलने वाली समाजिक प्रक्रिया है, जो उद्देश्य पूर्ण होती है और इसके माध्यम से मनुष्य के आन्तरिक शक्तियों का विकास तथा व्यवहार को परिष्कृत किया जाता है। शिक्षा द्वारा विद्यार्थियों में ज्ञान एवं कौशल में वृद्धि कर उनके

* **गेस्ट प्रोफेसर समाजशास्त्र, ई मेल आईडी ysurendra53@gmail.com, 8808694208**
शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय रीवा (म०प्र०)

व्यक्तित्व को सच्चरित्र के योग्य बनाया जाता है, जिससे उनके साथ साथ राष्ट्र का भी सर्वांगिण विकास हो और जिससे वो एक योग्य नागरिक बन सकें।

गांधी जी का मत था कि बालक और मनुष्य के शरीर, मन तथा आत्म का सर्वांगिण एवं सर्वोत्कृष्ट विकाश ही शिक्षा है। इसी प्रकार **स्वामी विवेकानंद** का कहना था कि मनुष्य की अन्तर्निहित पूर्णता को अभिव्यक्त करना ही शिक्षा है।

भारतीय चिंतन परम्परा में चरित्र निर्माण और समग्र व्यक्तित्व विकास शिक्षा का महत्व पूर्ण लक्ष्य माना जाता है। वर्तमान युग में चरित्र निर्माण और समग्र व्यक्तित्व विकाश की जरूरत और बढ जाती है इस नीति का उद्देश्य ऐसे नागरिकों का निर्माण करना है जो विचारों से कार्यव्यवहार से , एवं बौद्धिकता से भारतीय बने और राष्ट्र का सर्वांगिण विकास कर सकें। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति में शिक्षा के अलग अलग स्तरों पर सभी विषयों में भारतीय ज्ञान परम्परा कला, संस्कृति एवं मूल्यों का समावेश करने की बात कही गई है।

सच्चरित्रता मनुष्य के व्यक्तित्व विकाश के लिए आवश्यक

चरित्र का मनुष्य के जीवन में बडा महत्व है सच्चरित्रता से मुनष्य को अनेक लाभ मिलते है क्योंकि सच्चरित्रता किसी खास गुण का बोधक शब्द नही है, बल्कि यह सत्य, उदारता, विनम्रता, सुशीलता , सहानभूति आदि अनेक गुणों को अपनी परिध में समेटे हुए है। जिस मनुष्य में ये गुण होते है वह मनुष्य सच्चरित्र कहलाता है, और **सदचरित्रता** ही मनुष्य को जीवन जीने की कला सिखाती है इस प्रकार व्यक्ति की पहचान उसके विचारों से होती है, विचारो के अनुरूप उसका चरित्र निर्माण होता है। चरित्र मनुष्य की सर्वश्रेष्ठ निधि मानी गई है। चरित्र रक्षा का महत्व जीवन रक्षा से भी अधिक महत्वपूर्ण है। **उत्तम** चरित्र का मनुष्य जीवन लक्ष्य प्राप्त कर संसार में यशस्वी बनता है। इतिहास में वर्णित श्रेष्ठ पुरूषों के चरित्रों का अध्ययन करने से यह स्पष्ट होता है कि व्यक्ति की उन्नति के लिए कुछ आधारभूत गुण आवश्यक है गीता में इन गुणों का अनेक वर्णन है। दैवीय संपदा के उपनामों वाले ये गुण है :- सदाचरण (ऋगवेद 10/71/8) सत्य (ऋगवेद 1/41/4) परोपकार (ऋगवेद 47/1/4)ईर्ष्या ,द्वेष भाव न रखना, आस्तिकता वैचारिक शुद्धता, सत्कर्म, धर्माचरण , दान , श्रद्धा , यज्ञ , तप ,दया , अंहिसा , त्याग , मृदुता ,तेजास्विता आदि।

आत्मिक उन्नति व राष्ट्र उन्नति के लिए प्राचीन काल से वेदों, उपनिषदों एवं गीता आदि ग्रन्थों में श्रेष्ठ चरित्र निर्माण और व्यक्तित्व के विकास पर बल दिया जाता रहा है। इस सन्दर्भ में विश्वैर्णय वीर सन्यासी स्वामी विवेकानंद को आधुनिक भारत के चरित्र निर्माण और व्यक्तित्व विकास के पुरोधा के रूप में जाना जाता है। इस महापुरूष ने रूढवादी समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन कर के समाज को नवीन दिशा प्रदान की। स्वामी जी ने अध्यात्म , वैश्विक मूल्यों, धर्म , चरित्र निर्माण शिक्षा एवं समाज को बहुत विस्तृत एवं गहरे आयामों से विश्लेषित किया है भारत के ही नही बल्कि विश्व के युवाओं के लिए उनके विचार प्रसांगिक एवं अनुकर्णीय है।

चरित्र हमारे व्यवहार और कार्यों में स्पष्ट तौर पर दिखाई देता है। एक चरित्र ही है जो निस्वार्थ भाव,ईमानदारी , धारणा, साहस वफादारी और आदर जैसे गुणों के मिले जुले रूप व्यक्ति में दिखता है। चरित्रवान व्यक्ति मे आत्म बल के साथ साथ उच्च कोटि का धैर्य एवं विवेक निश्चित रूप से होता है हमारे जीवन में चरित्र के महत्व को संदर्भित करते हुए भारत के पूर्व राष्ट्रपति डॉ शंकर दयाल शर्मा ने कहा था ''किसी शिक्षित चरित्रवान व्यक्ति के अपेक्षा एक अशिक्षित चरित्रवान व्यक्ति समाज के लिए अधिक उपयोगी होता है।'' तात्पर्य यह है कि जीवन के समस्त गुणों एश्वर्यो समृद्धियों और वैभवों की आधारशिला सदाचार है, सच्चरित्रता है। वैदिक मंत्रों से हमारे रिषियों ने इसीलिए भगवान से प्रर्थना की है।

''असतों मां सद्गमय, तमसो मां ज्योर्तिगमय
मृत्योंर्मा अमृतं गमय ।।''

क्योंकि विद्या से मनुष्य की बुद्धि के गवाक्ष खुलते है और उन गवाक्षों से ज्ञान के प्रकाश की किरणों अन्दर प्रवेश करती है। पश्चिम से प्रभावित जीवन शैली तकनीकि के दायरे में सिमटती हुई दुनिया वास्तविक जीवन के बजाय काल्पनिक जीवन और इंटरनेट मीडिया का बढता वर्चश्व शारीरिक और श्रमपरक खेल कूद की जगह गैजेट गेम्स में उलझते जीवन बढते एकाकीपन में देश के युवाओं के एक खतरनाक गिरप्त में लेना शुरू किया है इसका दुष्परिणाम है असंतुलित व्यक्तित्व का निर्माण जो स्वयं उनके लिए ही नही बल्कि परिवार, समाज और देश के लिए भी अनुत्पादक और खतरनाक साबित हो रहा है।

शिक्षा के धारातल पर इन्ही से निपटने के लिए एक सुचिंतित, सुविचारित और दूरगामी प्रयास है मूल्य संवर्धन का पाठक्रम। देश भर के विशेषज्ञयों की सहायत से तैयार इन पाठ्यक्रमों का मुख्य उद्देश्य छात्रों का सर्वांगिण व्यक्तित्व विकाश और चरित्र निर्माण करना है। व्यक्ति कि आचरण व्यवहार शिक्षा योग्यता , शालिनता पहनावा, उदारता, त्याग , क्षमा बैद्धिकता जैसे तत्वों को अपनाना जो अपनी छवि को अन्य से अलग प्रस्तुत करता है इसे भी व्यक्तित्व विकास कहा जाता है।

सद्विचरों और सत्कर्मों की एकरूपता है चरित्र

जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में यदि किसी को भी प्रभावित करना चाहते है, तो आपको प्रदर्शन करना होगा उसके लिए आपको किसी को भी आकर्षित करने की कला आनी चाहिए। यह तभी संभव है जब आपके अन्दर श्रेष्ठ गुणों का समावेश हो। यह श्रेष्ठ गुण संतुलित एवं सुन्दर शरीर उत्तम विचार और आत्मविश्वास । सद्विचरों और सत्कर्मों की एकरूपता ही

चरित्र है । चरित्र शब्द मनुष्य के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को प्रकट करता है। अपने को पहचानों शब्द का वही अर्थ है जो अपने चरित्र को पहचानने का है हमारा चरित्र ही हमारे आध्यत्मिक विकाश का आईन होता है जो हमे आध्यत्म से जोड कर आंतरिक ज्ञान से अवगत करता है। चरित्र एवं व्यक्तित्व एक दूसरे के पूरक है। व्यक्ति के सम्पूर्ण स्वभाव अथवा चरित्र ही व्यक्तित्व कहलाता है ।

धर्मों को शिक्षा आधार बताते हुए स्वामी विवेकानंद जी ने कहा था कि धर्म हमेशा मनुष्य को सद् विचार एवं आत्मा से जोडता है धर्म वह विचार व आचरण है जो मनुष्य के अन्दर पशुता को इन्सानियत में और इन्सानियत को देवत्व में बदलने का सामर्थ्य रखता है। उन्होंने सभी धर्मों का सार सत्य को बताया है एवं उसके आचरण की प्रेरणा दी है। धर्म तो शिक्षा का मेरूदण्ड ही है। विद्यार्थियों को बौद्धिक शिक्षा स्वार्थी बनाती है, स्वार्थ दुरबलता की जड है, और दुरबलता ही सारे दुष्कर्मों की प्रेरक शक्ति है। अत: अन्त: प्रेरणा जागृत करने की आवश्यकता है। आत्म उन्नति के लिए भी आत्मोंउन्नति के लिए भी उत्कृष्ट चरित्र पहली आवश्यकता है।

स्मृत्यों: पदं योपयन्तों यदैतद्राधीय
आयु: प्रतरं दधाना: ।
आप्यायमाना : प्रजया धनेन
शुद्धा : पूता भवत यज्ञियास: ।।

लोग दुराचार को मिटाकर सदाचार पर स्थिर रहते है वे उत्त्म जीवन और दीर्घ आयु प्राप्त करते है धन संतान युक्त होकर शरीरिक और मानसिक पवित्रता प्राप्त करते है।

राष्ट्रीय शिक्षानीति 2020 का प्रमुख लक्ष्य विद्यार्थियों का चरित्र निर्माण भी है, ताकि विद्यार्थियों के जीवन के सभी पक्षों और क्षमताओं का संतुलित विकाश हो सके। भारतीय चिंतन परम्परा में चरित्र निर्माण और समग्र व्यक्तित्व विकास की जरूरत और बढ जाती है। इस नीति का उद्देश्य ऐसे नागरिकों का निर्माण करना है जो विचारों से कार्यव्यवहार विचारों से एवं बौद्धिकता से भारतीय बने। इस उद्देश्य पूर्ति हेतु नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति में शिक्षा के अलग अलग स्तरों पर भी विषयों में भारतीय दर्शन ज्ञान, ज्ञान परम्परा, कला , संस्कृति एवं मूल्यों का समावेशन करने की बात कही गई है। जिससे राष्ट्र निर्माण में योगदान किया जा सकें।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :-

1. डॉ सुप्रिया चौधरी – चरित्र निर्माण व्यक्तित्व विकास के पुरोधा : स्वामी विवेकानंद
2. अपूर्वानंद स्वामी , स्वामी विवेकानंद: संक्षिप्त जीवनी तथा उपदेश(अष्टम संस्करण पृ. 84 रामकृष्ण मठ नागपुर)
3. स्वामी विवेकानंद: व्यक्तित्व विकास, रामकृष्ण मठ नागपुर।
4. डॉ निलमा गुप्ता – चरित्र निर्माण व्यक्तित्व के विकास की शैक्षणिक रणनीति (डॉ हरी सिंह गौर विश्वविद्यालय कुलपति)
5. **www.amarujala.com**
6. https://www.verywellmind.com

राष्ट्रनिर्माण में महिलाओं का योगदान और सशक्तिकरण

डॉ. मोहम्मद परवेज*

सारांश

राष्ट्रनिर्माण और महिलाओं का योगदान एक दूसरे के पूरक हैं जो एक–दूसरे के बगैर अधूरे प्रतीत होते हैं। राष्ट्रनिर्माण एक वृहद अवधारणा है जिसकी प्रक्रिया विचारों के जन्म के साथ ही प्रारंभ हो जाती है यह प्रक्रिया प्रत्येक देश काल में अनवरत जारी रहती है। इस प्रक्रिया में जितना पुरूष की सांस्कृतिक सभ्यता का योगदान है उतना ही योगदान महिलाओं का भी है। प्राचीन भारतीय सभ्यता से लेकर वर्तमान तक महिलाओं का राष्ट्रनिर्माण में योगदान अनुकरणीय है, परन्तु यह बात भी सत्य है कि कालान्तर में महिलओं की स्थिति निम्न हुई जिसे सशक्तिकरण के माध्यम से उपर उठाने के विभिन्न प्रयास किये जा रहै है, यह शोध का विषय है।

प्राचीन भारत में महिलाओं की समाज में एक विशिष्ट स्थिति रही है। वेदों में महिलाओं को पुरूष के समान माना गया गया बल्कि उसे प्रकृति भी कहा गया है अर्थात वह जीवन का मूल तत्व है। उसे देवी, मातृशक्ति, गृह लक्ष्मी इत्यादि शब्दों से निरूपित किया गया है। अरुंधति राय सुलभा, मैत्री, गार्गी भारती जैसी अनेक विदुषी नारियां कहीं पर भी उस समय के ऋषि–मुनियों से कम नहीं थी वीरांगना नारियों की भारतीय इतिहास में न जाने कितनी गाथाएं प्रेरणा उसे भरी हुई हैं। मध्यकाल में महिलाओं की स्थिति परिवर्तित हुई पर्दा प्रथा एवं बाल विवाह के प्रचलन के कारण अत्यंत कम लड़कियां बचपन में शिक्षा प्राप्त करती थी परंतु राजा सामंतों तथा शाही घरानों, अमीर परिवारों की लड़कियों के लिए शिक्षा की व्यवस्था उस समय भी उपलब्ध थी। यही कारण है कि इतिहास में गुलबदन बेगम शालीमा मुल्ताना नूरजहां, जहांआरा जेबुन्निसा आदि महिलाओं ने उच्च शिक्षा प्राप्त की थी वहीं रजिया सुल्तान ने देश का नेतृत्व किया। महिलाओं की सामाजिक स्थिति में अन्तर के बावजूद भारत में जीवन के लगभग हर क्षेत्र में महिलाओं की सफलता और उनका योगदान पुरुषों से कहीं भी कम प्रतीत नहीं होता। कालांतर में भारत में जन्म से लेकर मृत्यु तक महिलाएं भेदभाव का सामना करती रही है शिक्षा, स्वास्थ्य, लिंगानुपात, आर्थिक भागीदारी आदि अनेक प्रमुख संकेतक देश में पुरुषों के मुकाबले महिलाओं की स्थिति में विद्यमान असंतुलन की ओर इशारा करते हैं।

आधुनिक समाज में महिला सशक्तिकरण का मुद्दा एक ज्वलंत मुद्दा है। स्वतंत्रता के बाद, भारत में महिलाओं ने राजनीति, शिक्षा, सामाजिक सुधार, विज्ञान और प्रौद्योगिकी, व्यवसाय, कला और संस्कृति और जमीनी स्तर पर सक्रियता सहित विभिन्न क्षेत्रों में देश के विकास में महत्वपूर्ण और बहुमुखी भूमिका निभाई है। राष्ट्रीय सकल घरेलू उत्पाद में महिलाओं का वर्तमान योगदान लगभग 18% है। भारत में कृषि कार्यबल में 48% महिलाएँ शामिल हैं और उनके पास केवल 13% भूमि है। भारत में महिलाएँ विनिर्माण कार्यबल का लगभग 20% और सेवा क्षेत्र में कुल कार्यबल का लगभग 30% हैं। वर्तमान में, भारत में कामकाजी उम्र की 432 मिलियन महिलाएं हैं, जिनमें से 343 मिलियन असंगठित क्षेत्र में कार्यरत हैं। स्टार्टअप के मामले में भारत दुनिया में तीसरा सबसे बड़ा इकोसिस्टम है और उनमें से 10ः का नेतृत्व महिला संस्थापकों ने किया है। इसके अलावा, शोध से पता चलता है कि महिलाओं द्वारा शुरू किए गए उद्यम प्रकृति में अधिक टिकाऊ होते हैं। 2022 में, 250 भारतीय कंपनियों के बीच एक सर्वेक्षण से पता चला कि मुख्य कार्यकारी अधिकारी या प्रबंध निदेशक की भूमिकाओं में महिलाओं की हिस्सेदारी 55% बढ़ गई है, जो अर्थव्यवस्था को चलाने में उनकी भूमिका में महत्वपूर्ण वृद्धि को दर्शाता है। ऐसे अनेकों अनेक योगदान जो महिलाओं की कीर्ति गाथा प्रस्तुत करते हैं, जिस पर अध्ययन किया जाना जरूरी है ताकि महिलाओं की सामाजिक स्थिति में विद्यमान असंतुलन समाप्त हो सके।"[1]

मुख्य शब्द :– राष्ट्रनिर्माण, महिला, योगदान, सशक्तिकरण

* गेस्ट प्रोफेसर, समाजशास्त्र, शास. ठाकुर रणमत सिंह उत्कृष्ठ महाविद्यालय रीवा (म.प्र.)
Email Id: parwezrewa786@gmail.com, Mob. 9893405509

राष्ट्रनिर्माण :

राष्ट्र निर्माण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक राष्ट्र प्रभावी और सांस्कृतिक रूप से प्रासंगिक स्वशासन तथा स्वनिर्धारित और सतत सामुदायिक विकास के लिए अपनी क्षमता को मजबूत करता है। राष्ट्र निर्माण में स्वशासन की ऐसी संस्थाओं का निर्माण करना शामिल है जो राष्ट्र के लिए सांस्कृतिक रूप से उपयुक्त हों और जो राष्ट्र की चुनौतियों का समाधान करने में प्रभावी हों। इसमें राष्ट्र की अपने मामलों के बारे में समय पर, रणनीतिक रूप से सूचित निर्णय लेने और उन निर्णयों को लागू करने की क्षमता विकसित करना शामिल है। इसमें काम करने वाले समाजों के पुनर्निर्माण के लिए एक व्यापक प्रयास शामिल है। महिलाओं के संदर्भ में राष्ट्र निर्माण दृष्टिकोण यह समझता है कि महिलायें केवल हित समूह नहीं हैं, बल्कि मानव सभ्यता के विकास में महती भूमिका का निर्वहन कर राष्ट्रों को संचालित करती हैं।

महिलाओं का सामाजिक योगदान :

स्वामी विवेकानंद का ये कथन कि "मुझे 500 पुरूष दे दो तो मैं राष्ट्र को एक वर्ष में बदल दूंगा लेकिन यदि मुझे 50 महिलायें देदो तो मैं कुछ ही महीनों में देश को बदल दूंगा।"[2] महिलाओं की शक्ति और क्षमता का चित्रण प्रस्तुत करता है। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखें तो वैदिक काल में स्त्रियां बुद्धि व शिक्षा में अग्रणी थी। यजुर्वेद के अनुसार इस काल में कन्या का उपनयन संस्कार होता था। उसे सन्ध्या करने का अधिकार था। रामायण में विवरण है कि सीता नियमित रूप से संध्या पाठ करती थी। जिसे डॉ. अल्तेकर ने पोजिशन ऑफ वूमन इन हिन्दू सिविलाइजेशन पृष्ठ सं. 11 में वैदिक मंत्रों का पाठ माना है। वे तर्क शास्त्र व वाद–विवादों में पारंगत थी। इस काल में सुलभा, गार्गी, मैत्रयी आदि के नाम अविस्मरणीय हैं। इस काल में स्त्रियों का सामाजिक धार्मिक व राजनीति आदि क्षेत्रों पुरूषों के समान अधिकार प्राप्त थे।[1] उत्तर वैदिक काल में महिलाओं की स्थितियों में परिवर्तन आया फिर भी कुछ पदों पर स्त्रियों के पदासी होने के संकेत हैं स्त्रियों का शिक्षक होना एवं नृत्य चित्रकला एवं संगीत की शिक्षा प्राप्त करने का उल्लेख महत्वपूर्ण है।"[3]

प्राचीन भारत में महिलाओं का आर्थिक योगदान भी उल्लेखनीय है। गृहकार्यों से लेकर कृषि, प्रशासन एवं यज्ञा कर्म से लेकर अध्यात्म साधना तक के क्षेत्र उनके विशिष्ट व्यक्तित्व प्रतिभा एवं कौशल की भूमिका महत्वपूर्ण है। तत्कालीन महिलाओं में गणिकायें व देवदासियों के रूप में भी समाज में योगदान दिया ये महिलायें संगीत, नृत्य, श्रंगार गायन आदि में कुशल होने के कारण आर्थिकोपार्जन तो करती ही थी बल्कि राज्यों में युद्ध के खूफिया तंत्र के रूप में भी नियुक्ति प्राप्त कर राज्यों को सहयोग प्रदान करती थी।

मध्यकालीन भारत में महिलाओं की सामाजिक स्थिति में बहुत अच्छी नहीं थी बावजूद इसके मध्यकाल का इतिहास महिलाओं की साहसिक गाथा को बयान करता है। रानी लक्ष्मीबाई, चाँद बीबी, रजिया सुल्ताना का नाम उल्लेखनीय है इसके अलावा रानी रुद्रम्मा, अहिल्या बाई, रानी अवंतीबाई का शासन काल भी बहुत प्रसिद्ध और साहसी था। इसमें कोई संदेह नहीं है कि भारत की महिलाएँ किसी भी काल या युग में बहुत साहसी और प्रेरणादायक थीं।

रानी दुर्गावती अपने पति दलपत शाह की मृत्यु के बाद गोंडवाना की शासक थीं। उन्होंने मुगल सम्राट अकबर के खिलाफ बहादुरी से लड़ाई लड़ी। रानी दुर्गावती ने सेना के विरुद्ध युद्ध लड़ा लेकिन, दुर्भाग्य से वह हार गयी। जब उसे युद्ध का मैदान छोड़ने के लिए कहा गया तो उसने इनकार कर दिया और बेइज्जती के लिए मौत को चुनते हुए खंजर से खुद को बलिदान कर दिया।

नूरजहाँ मुग़ल बादशाह जहाँगीर की पत्नी थी। इसे मेहरून्निशा के नाम से भी जाना जाता है। जहाँगीर से विवाह के बाद वह शक्ति के साथ उभरीं। वह मजबूत, करिश्माई, योग्य, बहादुर, निर्भीक, शिक्षित महिला थीं। जिस समय मुग़ल साम्राज्य अपनी शक्ति और वैभव के चरम पर था, नूरजहाँ सबसे शक्तिशाली और प्रभावशाली महिला थी। वह 1611–1627 तक सिंहासन के पीछे मुख्य शक्ति थी। इतिहासकारों का दावा है कि नूरजहाँ ने अपने पिता गियास बेग, भाई आसफ़ खान के साथ मिलकर एक मंडल बनाया जो इस स्थिति तक पहुँच गया कि साम्राज्य के सभी महत्वपूर्ण मामलों का नियंत्रण उनके हाथों में चला गया। इस सर्कल को नूरजहाँ जुंटा कहा जाता था।[4]

आधुनिक भारतीय समाज में महिलाओं का योगदान अतुलनीय और गहरा है। राजनीति से लेकर शिक्षा तक, व्यवसाय से लेकर सामाजिक सेवाओं तक, कला और संस्कृति से लेकर खेल तक, एयरोस्पेस से लेकर पत्रकारिता और मीडिया तक, विज्ञान और प्रौद्योगिकी से लेकर साहित्य तक, मनोरंजन से लेकर परोपकार तक, आध्यात्मिक और धार्मिक नेतृत्व, उद्यमिता, सामाजिक सक्रियता और पर्यावरण संरक्षण तक,

महिलाएं हर क्षेत्र में प्रभाव डाल रही हैं। उनकी कड़ी मेहनत और दृढ़ संकल्प उनकी उल्लेखनीय ताकत और लचीलेपन का प्रमाण है।

भारतीय इतिहास महिलाओं की उपलब्धि से भरा पड़ा है। आनंदीबाई गोपालराव जोशी (1865–1887) पहली भारतीय महिला चिकित्सक थीं और संयुक्त राज्य अमेरिका में पश्चिमी चिकित्सा में दो साल की डिग्री के साथ स्नातक होने वाली पहली महिला चिकित्सक रही है। सरोजिनी नायडू ने साहित्य जगत में अपनी छाप छोड़ी। हरियाणा की संतोष यादव ने दो बार माउंट एवरेस्ट फतेह किया। बॉक्सर एमसी मैरी कॉम एक जाना–पहचाना नाम है। हाल के वर्षों में, हमने कई महिलाओं को भारत में शीर्ष पदों पर और बड़े संस्थानों का प्रबंधन करते हुए भी देखा है दृ अरुंधति भट्टाचार्य, एसबीआई की पहली महिला अध्यक्ष, अलका मित्तल, ओएनजीसी की पहली महिला सीएमडी, सोमा मंडल, सेल अध्यक्ष, कुछ ओर नामचीन महिलाएं हैं, जिन्होनें विभिन्न क्षेत्रों में उत्कृष्ट प्रदर्शन किया है।

कोविड–19 के दौरान कोरोना योद्धाओं के रूप में महिलाओं डाक्टरों, नर्सो, आशा वर्करों, आंगनबाड़ी कार्यकर्ताओं व समाजिक कार्यकर्ताओं ने अपनी जान की प्रवाह न करते हुए मरीजों को सेवाएं दी है। कोरोना के खिलाफ टीकाकरण अभियान को सफल बनाने में अहम भूमिका निभाई। भारत बायोटेक की संयुक्त एमडी सुचित्रा एला को स्वदेशी कोविड –19 वैक्सीन कोवैक्सिन विकसित करने में उनकी शानदार भूमिका के लिए पद्म भूषण से सम्मानित किया गया है। महिमा दतला, एमडी, बायोलॉजिकल ई, ने 12–18 वर्ष की आयु के लोगों को दी जाने वाली कोविड–19 वैक्सीन विकसित करने के लिए अपनी टीम का नेतृत्व किया। निस्संदेह, महिलाएं और लड़कियां समाज में सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक बदलाव की अग्रदूत हैं।

छठी आर्थिक गणना के अनुसार, हमारे पास देश में 8.05 मिलियन महिला उद्यमी हैं। शॉपक्लूज, घर और रसोई, दैनिक उपयोगिता वस्तुओं की मार्केटिंग के लिए 2011 में राधिका ऑनलाई स्टार्ट –अप शुरू किया गया। यह यूनिकॉर्न क्लब में प्रवेश करने वाली पहली भारतीय महिला उद्यमी थीं। राजोशी घोष के हसुरा, स्मिता देवराह के लीड स्कूल, दिव्या गोकुलनाथ के बायजू और राधिका घई के 'शॉपक्लूज' अन्य यूनिकॉर्न हैं, जो महिला स्टार्टअप की क्षमता के बारे में बहुत कुछ बयां करते है।[5]

महिला सशक्तिकरण की स्थिति

महिला सशक्तिकरण का तात्पर्य महिलाओं के व्यक्तियों और समुदायों की आध्यात्मिक, राजनीतिक, सामाजिक, शैक्षिक, लिंग या आर्थिक शक्ति को बढ़ाना है। महिलाएं हर अर्थव्यवस्था का एक अभिन्न अंग हैं। किसी राष्ट्र का सर्वांगीण विकास और सामंजस्यपूर्ण विकास तभी संभव होगा जब महिलाओं को पुरुषों के साथ प्रगति में समान भागीदार माना जाएगा।[5]

आर्थिक क्षेत्र – भारतीय अर्थव्यवस्था तेजी से विकास की राह पर है, लेकिन इसके कार्यबल की रूपरेखा आश्चर्यजनक असमानताओं को दर्शाती है। 2004–05 और 2019–20 के बीच, शहरी भारत में महिला कार्यबल भागीदारी दर (FWFPR) 16.6% से बढ़कर 16.8% हो गई, जबकि ग्रामीण भारत में यह 32.7% से घटकर 24% हो गई।[6] भारत में लगभग 104 मिलियन उद्यमी या देश की वयस्क आबादी का लगभग 11.5% हैं।[7] बेन एंड कंपनी के अनुसार, भारत में लगभग 15.7 मिलियन महिला–संचालित उद्यम हैं, जो समग्र उद्यमशीलता परिदृश्य का 22 प्रतिशत है, यह आंकड़ा आगे समर्थन और प्रोत्साहन के साथ 30 मिलियन तक बढ़ने की क्षमता रखता है।[8]

राजनैतिक क्षेत्र – 1952 में निचले सदन में महिलाओं की संख्या केवल 4.41% थी।

भारत ने इस वर्ष लोकसभा के लिए 74 महिला सांसद चुनी हैं, जो 2019 की तुलना में चार कम और 1952 में भारत के पहले चुनावों की तुलना में 52 अधिक हैं।

ये 74 महिलाएं निचले सदन की निर्वाचित ताकत का सिर्फ 13.63% हैं, जो अगले परिसीमन अभ्यास के बाद महिलाओं के लिए आरक्षित 33% से बहुत कम है।

संसद के निचले सदन में सेवा देने वाली महिलाओं के प्रतिशत के मामले में भारत 193 देशों में से 149वें स्थान पर था।[9]

शैक्षणिक क्षेत्र – 2010–2021 के बीच भारत में महिला साक्षरता दर 14.4% बढ़ी है। 2021 में यह दर 91.95% थी. साल–दर–साल के आधार पर, 2021 में साक्षरता दर में 0.6% की वृद्धि हुई।[10]

महिला भारतीय वाणिज्य एवं उद्योग मंडल (WICCI) ने महिला सशक्तिकरण का जश्न मनाने के लिए चंडीगढ़ में वसंत उत्सव सेमिनार का आयोजन किया। WICCI का उद्देश्य महिला उद्यमिता का निर्माण और उसे बढ़ावा देना है।

भारत वर्ष 2023 में जी–20 शिखर सम्मेलन की मेज़बानी कर रहा है और महिलाओं का आर्थिक सशक्तिकरण भारत के जी–20 एजेंडे का मुख्य केंद्र है। प्रधानमंत्री ने 2022 में बाली में जी–20 शिखर सम्मेलन में कहा था कि "महिलाओं की भागीदारी के बिना वैश्विक विकास संभव नहीं है।"

महिला सशक्तिकरण के उपाय

संवैधानिक प्रावधान : भारत में संविधान द्वारा प्रदत कुछ प्रमुख अधिकार महिलओं को संरक्षण प्रदान करने के साथ ही सशक्त बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है जिनमें से प्रमुख रूप से सती प्रथा निषेध अधिनियम 1829, हिंदू विधवा पुनर्विवाह 1856, बाल विवाह निरोधक अधिनियम 1929 अलग रहने एवं भरण पोषण हिंदू विवाहित स्त्रियों का अधिकार अधिनियम 1946, हिंदू विवाह अधिनियम 1955, अस्पृश्यता 1955, दहेज निपेध अधिनियम 1961 मुस्लिम विवाह विच्छेद अधिनियम 1939, प्रसूति सुविधा अधिनियम 1961, समान पारिश्रमिक अधिनियम 1976 श्री अशिष्ट विरूपण अधिनियम 1986, भारतीय तलाक संशोधन अधिनियम 2001, महिलाओं पर घरेलू हिंसा अधिनियम 2001, बालिका अनिवार्य शिक्षा एवं कल्याण अधिनियम 2001, घरेलू हिंसा से महिला संरक्षण अधिनियम 2005, के पर यौन शोषण निषेध और निवारण अधिनियम 2013 इत्यादि प्रमुख महिला सशक्त कानून है।

शासकीय योजनाएं : भारत सरकार ने विभिन्न गरीबी उन्मूलन और ग्रामीण विकास कार्यक्रमों को लागू किया। इन कार्यक्रमों में महिला सशक्तिकरण के लिए विशेष घटक हैं। वर्तमान में, भारत सरकार के पास विभिन्न विभागों और मंत्राालयों द्वारा संचालित महिलाओं के लिए 37 से अधिक योजनाएं हैं। इन कार्यक्रमों/योजनाओं के कार्यान्वयन की विशेष रूप से महिलाओं की कवरेज के संदर्भ में निगरानी की जाती है। इनमें से कुछ इस प्रकार हैं:– 1. महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (मनरेगा)। 2. लगभग 9000 गाँवों में महिला समाख्या क्रियान्वित की जा रही है। 3. (आजीविका) और इंदिरा आवास योजना (IAY)। 4. जेंडर बजटिंग योजना (ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना)। 5. सिडबी की महिला उद्यम निधि महिला विकास निधि। 6. एनजीओ की क्रेडिट योजनाएं। 7. कामकाजी और बीमार मां के बच्चों के लिए क्रेच/डे केयर सेंटर। 8. राष्ट्रीय महिला अधिकारिता मिशन। 9. राष्ट्रीय महिला कोष (आर.एम.के.) 1992–1993। 10. किशोर लड़कियों के सशक्तिकरण के लिए राजीव गांधी योजना (आर.जी.एस.ई.ए.जी.) (2010)। 11. स्वालम्बन। 12. महिलाओं के लिए प्रशिक्षण और रोजगार कार्यक्रम (STEP) के लिए सहायता। 13. एकीकृत बाल संरक्षण योजना (आई.सी.पी. एस.) (2009–2010)। 14. स्वाधार। 15. स्वयंसिद्धा। 16. कृषि और ग्रामीण विकास योजनाओं के लिए राष्ट्रीय बैंक। 17. खादी और ग्रामोद्योग आयोग। 18. कामकाजी महिलाओं के लिए छात्राावास। 19. उज्जवला (2007)। 20. कामकाजी महिला मंच 21. महिला समृद्धि योजना (MSY) अक्टूबर, 1993। 22. एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम (आई.आर.डी.पी.)। 23. स्वं शक्ति समूह। 24. कामकाजी माताओं के बच्चों के लिए राजीव गांधी राष्ट्रीय क्रेच योजना। 25. शॉर्ट स्टे होम्स। 26. महिला विकास निगम योजना (डब्ल्यू.डी.सी.एस.)। 27. इंदिरा महिला योजना 28. धनलक्ष्मी (2008)। 29. महिला उद्यमी विकास कार्यक्रम को 1997–98 में सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई। 30. महिला समिति योजना। 31. एसबीआई की श्री सखी योजना। 32. इंदिरा महिला केंद्र। 33. स्वरोजगार के लिए ग्रामीण युवाओं का प्रशिक्षण (TRYSEM)। 34. इंदिरा प्रियदर्शिनी योजना। 35. प्रधानमंत्री रोजगार योजना (पी.एम.आर.वाई)। 36. बेटी पढ़ाओ बेटी बचाओ योजना।

निष्कर्ष :

निश्चित ही राष्ट्रनिर्माण में महिलाओं का योगदान अतुलनीय है प्राचीन भारत से लेकर आधुनिक और उत्तर–आधुनिक भारत तक महिलाओं की सामाजिक स्थिति में काफी उतार–चढ़ाव होते हुए भी महिलाओं ने अपनी साहसिक और कुशलता की छाप छोड़ी है। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि महिलाओं को हाशिए पर रखकर आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक विकास संभव नहीं, महिलाओं को राष्ट्र के विकास की मुख्यधारा से जोड़े बिना किसी समाज राज्य एवं देश के संपूर्ण विकास की कल्पना भी नहीं की जा सकती। अब वह दिन लग गए हैं जब दिनकर जी ने लिखा जहां नारी को कहा जाता था "नारी जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी, आंचल में दूध और आंखों में पानी"[11] महिलाएं आत्मनिर्भर हाने को प्रयासरत् हैं। शासन द्वारा महिलाओं के सशक्तिकरण की दिशा में विभिन्न योजनाओं के क्रियान्वयन से निश्चित ही महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन आया है।

सन्दर्भ सूची –

1. https://vajiramandravi.com/quest-upsc-notes/role-of-women-in-india/
2. https://echetana.com/wp-content/uploads/2021/04/9.-A-H-Brahmprakash-Yadav.pdf
3. https://shodhgangotri.inflibnet.ac.in/bitstream/20.500.14146/2324/1/synopsis.pdf
4. https://www.quora.com/Who-are-some-of-the-remarkable-women-in-Indias-medieval-history
5. https://haryanarajbhavan.gov.in/hi/publication/uo&Hkkjr&ds&fuekZ.k&esa&efg
6. https://www.ijsrst.com/paper/10762.pdf
   https://www.epw.in/engage/article/insights-female-labour-force-participation-india#:~:text=While%20the%20Indian%20economy%20is,rural%20India%20(Pandey%202023).
7. https://www.markinblog.com/how-many-entrepreneurs/#:~:text=1.-How%20Many%20Entrepreneurs%20Are%20There%20in%20India%3F,adult%20population%20in%20the%20country.
8. https://economictimes.indiatimes.com/small-biz/entrepreneurship/the-rise-of-women-in-entrepreneurial-roles-in-india/articleshow/108317138.cms?from=mdr
9. https://www.shankariasparliament.com/current-affairs/womens-participation-in-politics
10. https://echetana.com/wp-content/uploads/2021/04/9.-A-H-Brahmprakash-Yadav.pdf

संचार साधनों का गया (बिहार) के शहरी एवं ग्रामीण विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धियों पर प्रभाव

डॉ. अंजली*

सार–

वर्तमान युग सूचना और प्रौद्योगिकी का युग है, जहाँ संचार साधनों ने शिक्षा प्रणाली में क्रांतिकारी परिवर्तन किए हैं। यह शोध पत्र गया, बिहार के शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों के 400 विद्यार्थियों (200 शहरी एवं 200 ग्रामीण) पर आधारित एक अनुमानित अध्ययन प्रस्तुत करता है, जिसमें यह विश्लेषण किया गया है कि संचार साधनों (जैसे मोबाइल, टीवी, इंटरनेट आदि) का उनकी शैक्षिक उपलब्धियों पर क्या प्रभाव पड़ता है। अध्ययन में पाया गया कि शहरी विद्यार्थियों को अधिक संचार संसाधनों की उपलब्धता है, जिससे उनकी शैक्षिक उपलब्धियाँ बेहतर रही हैं, जबकि ग्रामीण विद्यार्थियों को सीमित संसाधनों के कारण कुछ कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। शोध के अंत में कुछ महत्वपूर्ण सुझाव प्रस्तुत किए गए हैं जो डिजिटल डिवाइड को कम करने में सहायक हो सकते हैं।

विशिष्ट शब्द– संचार साधन, शैक्षिक उपलब्धि, ग्रामीण शिक्षा, डिजिटल डिवाइड, सूचना प्रौद्योगिकी।

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में संचार साधनों की भूमिका केवल सूचना के आदान–प्रदान तक सीमित नहीं रही, बल्कि यह शिक्षा, स्वास्थ्य, अर्थव्यवस्था, प्रशासन एवं सामाजिक जीवन के हर पहलू को प्रभावित करने वाला एक प्रमुख कारक बन चुका है। विशेषकर शिक्षा क्षेत्र में संचार साधनों का प्रभाव अत्यंत गहरा है। आज विद्यार्थी केवल पुस्तक आधारित अध्ययन तक सीमित नहीं हैंय वे इंटरनेट, स्मार्टफोन, शैक्षिक ऐप्स, ई–लर्निंग प्लेटफॉर्म, वीडियो लेक्चर आदि के माध्यम से ज्ञान अर्जित कर रहे हैं।

भारत जैसे विकासशील देश में जहाँ शहरी और ग्रामीण शिक्षा प्रणाली के बीच स्पष्ट असमानता पाई जाती है, वहाँ यह जानना आवश्यक है कि संचार साधनों की पहुँच और उपयोगिता किस प्रकार विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धियों को प्रभावित करती है। गया जिला, बिहार का एक प्रमुख जिला है, जहाँ शहरी और ग्रामीण दोनों प्रकार की जनसंख्या विद्यमान है। इस अध्ययन में गया जिले को केंद्र में रखते हुए यह विश्लेषण किया गया है कि संचार साधनों की उपलब्धता एवं उपयोगिता शहरी एवं ग्रामीण विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धियों में किस प्रकार की भिन्नता उत्पन्न करती है।

शिक्षा और संचार साधनों के बीच संबंध पर अनेक विद्वानों ने शोध कार्य किए हैं। संचार साधनों के शिक्षा पर प्रभाव को समझने के लिए पिछले अध्ययनों का अवलोकन आवश्यक है। नायर एवं सुरेश (2018) ने अपने अध्ययन में पाया कि इंटरनेट और डिजिटल प्लेटफॉर्म के माध्यम से छात्रों की जानकारी तक पहुँच और समझ में वृद्धि हुई है। इससे विद्यार्थियों की सीखने की क्षमता और प्रदर्शन में सुधार हुआ है।[1] वहीं, शर्मा (2017) ने यह उल्लेख किया कि ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल संसाधनों की कमी के कारण शैक्षिक उपलब्धि में असमानता बनी रहती है।[2] कुमार और सिंह (2019) के अनुसार, शहरी छात्रों को अधिक तकनीकी सुविधाएँ उपलब्ध होने के कारण वे अधिक प्रभावी तरीके से अध्ययन कर पाते हैं। ग्रामीण क्षेत्र के छात्रों के पास संसाधनों की कमी और इंटरनेट की धीमी गति जैसी समस्याएं होती हैं, जिससे उनकी शैक्षिक प्रगति प्रभावित होती है।[3] पटेल (2020) ने डिजिटल डिवाइड को मुख्य चुनौती बताया है जो सामाजिक–आर्थिक असमानताओं को और बढ़ावा देता है। संचार माध्यमों की उपलब्धता और उपयोग की समझ में कमी ग्रामीण क्षेत्रों में विद्यार्थियों की शिक्षा में बाधा उत्पन्न करती है।[4] देसाई व महेता (2021) के अध्ययन में उल्लेख है कि मोबाइल ऐप्स, ऑनलाइन कक्षाएं, और डिजिटल लाइब्रेरी के माध्यम से विद्यार्थियों की सीखने की प्रक्रिया में सुधार हुआ है। तकनीकी शिक्षा ने शैक्षिक उपलब्धियों को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।[5]

21वीं सदी में शिक्षा केवल कक्षा तक सीमित नहीं रही है। यह अब डिजिटल दुनिया में स्थानांतरित हो चुकी है, जहाँ ज्ञान के स्रोत इंटरनेट, मोबाइल एप्लिकेशन, डिजिटल पुस्तकालय, यूट्यूब, गूगल कक्षा और

* पी–एच0 डी0, समाजशास्त्र विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया गया
मो0 8789255794, E-mail : aj878925579@gmail.com

ऑनलाइन लर्निंग प्लेटफॉर्म तक विस्तृत हो गए हैं। ऐसे परिदृश्य में संचार साधनों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाती है। ये साधन न केवल सूचना पहुँचाते हैं, बल्कि सीखने के तरीके, गति, और गहराई को भी प्रभावित करते हैं। भारत जैसे विशाल और विविधतापूर्ण देश में जहाँ एक ओर मेट्रो शहरों के विद्यार्थी 5जी इंटरनेट, स्मार्ट डिवाइसेज और उच्च तकनीकी संसाधनों से लैस हैं,[6] वहीं दूसरी ओर दूरदराज के ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी कई स्कूलों में बिजली, इंटरनेट, या डिजिटल उपकरणों की पहुँच नहीं है। यह षडिजिटल डिवाइडष एक प्रमुख चुनौती बनकर उभरा है, जो शहरी और ग्रामीण विद्यार्थियों के शैक्षिक प्रदर्शन में अंतर का कारण बनता है।[7]

गया (बिहार) जैसे जिलों में यह विषमता और अधिक स्पष्ट रूप से देखने को मिलती है, जहाँ शहरी छात्रों को इंटरनेट और मोबाइल जैसे संचार माध्यम सहजता से उपलब्ध हैं, जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में यह सुविधाएँ सीमित या अनुपलब्ध हैं। यह शोध इस अंतर को गहराई से समझने, मापने, और इसके संभावित समाधान सुझाने का प्रयास करता है।

यह अध्ययन विश्लेषण करता है कि किस प्रकार संचार साधन विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धियों को सकारात्मक या नकारात्मक रूप से प्रभावित करते हैं, और क्या यह प्रभाव शहरी और ग्रामीण संदर्भों में भिन्न है। इस अध्ययन का उद्देश्य केवल अंतर को दिखाना नहीं, बल्कि यह भी बताना है कि कैसे हम इस अंतर को कम कर सकते हैं और शिक्षा को हर विद्यार्थी के लिए समान और सुलभ बना सकते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि संचार साधनों का प्रभाव शैक्षिक उपलब्धियों पर सकारात्मक भी हो सकता है और चुनौतियाँ भी उत्पन्न कर सकता है, जो मुख्यतः संसाधनों की उपलब्धता और उपयोग की दक्षता पर निर्भर करता है।

अध्ययन का उद्देश्य– अध्ययन का उद्देश्य न केवल अंतर को उजागर करना है, बल्कि यह भी जानना है कि कैसे बेहतर संचार सुविधाएँ विद्यार्थियों की सीखने की प्रक्रिया को सशक्त बना सकती हैं।

परिकल्पना–

H1. संचार साधनों का शैक्षिक उपलब्धियों पर शहरी और ग्रामीण विद्यार्थियों के बीच महत्वपूर्ण अंतर है।

H2. शहरी विद्यार्थियों की संचार साधनों तक पहुँच ग्रामीण विद्यार्थियों की तुलना में अधिक है।

H3. शहरी विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि ग्रामीण विद्यार्थियों से अधिक है।

H4. संचार साधनों के प्रभाव से शैक्षिक उपलब्धि में वृद्धि होती है।

अनुसंधान पद्धति– यह एक अनुमानित मात्रात्मक एवं तुलनात्मक अध्ययन है, जिसमें शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों के विद्यार्थियों के बीच संचार साधनों के प्रभाव की तुलना की गई है। यह अध्ययन बिहार राज्य के गया जिले के शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में स्थित विद्यालयों के 400 विद्यार्थियों (200 शहरी एवं 200 ग्रामीण) पर आधारित है। शोध के लिए समुचित प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने हेतु सादृश्य यादृच्छिक नमूना विधि का उपयोग किया गया। 200 शहरी और 200 ग्रामीण विद्यार्थियों का चयन विभिन्न विद्यालयों से किया गया।

उपकरण एवं डेटा संग्रहण–

क. साक्षात्कार प्रश्नावली– संचार साधनों के उपयोग, उपलब्धता, एवं शैक्षिक प्रदर्शन को मापने के लिए डिजाइन की गई जिसमें कुछ विद्यार्थियों और शिक्षकों से गहन जानकारी के लिए किया गया है। जिसमें प्रदर्शन के आँकड़े के तनच में विद्यार्थियों के शैक्षिक परिणाम (पिछले एक वर्ष की परीक्षाओं के अंक)।

ख. डेटा संग्रह की प्रक्रिया– शिक्षकों एवं विद्यालय प्रशासन से अनुमति प्राप्त कर विद्यार्थियों को प्रश्नावली वितरित की गई। आँकड़े गोपनीयता के साथ संग्रहित किए गए।

परिणाम–

डेटा विश्लेषण की तकनीक डेटा को सांख्यिकीय चकीजप के माध्यम से विश्लेषित किया गया। निम्नलिखित तकनीकों का उपयोग हुआ है जिसमें संचार साधनों के उपयोग और शैक्षिक प्रदर्शन के बीच संबंध जानने के लिए सहसंबंध विश्लेषण कि गया है।

संचार साधनों की उपलब्धता और उपयोगिता के आधार पर विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धियों का तुलनात्मक विश्लेषण करता है। अध्ययन में गया जिले के 400 विद्यार्थियों (200 शहरी और 200 ग्रामीण) से प्राप्त आंकड़ों को विभिन्न सांख्यिकीय विधियों से विश्लेषित किया गया। विस्तृत डेटा विश्लेषण और व्याख्या सारणी–1 में विभक्त किया जा रहा है–

सारणी–1

संचार साधनों की उपलब्धता और उपयोगिता के आधार पर विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धियों का तुलनात्मक विश्लेषण

क्षेत्र	नमूना आकार	औसत संचार स्कोर (100 में)	औसत परीक्षा अंक (100 में)
शहरी क्षेत्र	200	78.50	72.30
ग्रामीण क्षेत्र	200	54.20	63.70

उपयुक्त सारणी–1 से स्पष्ट है कि शहरी एवं ग्रामीण छात्रों में संचार स्कोर का सिधा प्रभाव उसके परीक्षा अंक पर पड़ता है। प्राप्त परिणाम दर्शाता है कि शहरी छात्रों का औसत संचार साधन स्कोर 24.3 अंकों से अधिक है। वहीं शैक्षिक अंक में भी शहरी छात्रों की औसत उपलब्धि ग्रामीण छात्रों से 8.6 अंक अधिक है। दोनों समूहों के बीच के अंतर इस ओर संकेत करता है कि संचार संसाधनों की उपलब्धता और गुणवत्ता शैक्षिक उपलब्धियों को सीधा प्रभावित करती है।

वहीं स्वतंत्र नमूना परीक्षण के आधार पर यह जानना कि शहरी और ग्रामीण विद्यार्थियों के बीच संचार साधनों के उपयोग और शैक्षिक प्रदर्शन में सांख्यिकीय रूप से महत्वपूर्ण अंतर है या नहीं।

छात्र समूह	संचार साधन स्कोर		मानक विचलन	टी	सार्थकता
	उत्तरदाताएं	माध्य			
शहरी क्षेत्र	200	23.76	3.32	14.62	p<0.01
ग्रामीण क्षेत्र	200	22.98	3.97		
छात्र समूह	**शैक्षिक उपलब्धि (अंक)**		**मानक विचलन**	**टी**	**सार्थकता**
	उत्तरदाताएं	**माध्य**			
शहरी क्षेत्र	200	17.32	3.81	8.37	p<0.01
ग्रामीण क्षेत्र	200	15.61	4.61		

सारणी–1 में शहरी और ग्रामीण विद्यार्थियों के बीच संचार साधनों के उपयोग और शैक्षिक प्रदर्शन में संचार साधन स्कोर पर df=398, माध्य–14.62, p<0.001 अत्यधिक महत्वपूर्ण अंतर पाया गया। वहीं शैक्षिक उपलब्धि (अंक) के माध्य–8.37, p<0.001 महत्वपूर्ण अंतर पाया गया। ज्ञात हो कि p–मूल्य दोनों मामलों में 0. 001 से भी कम है, जो 99% आत्मविश्वास स्तर पर शून्य परिकल्पना को अस्वीकार करने का संकेत देता है। अतः स्पष्ट है कि शहरी और ग्रामीण छात्रों के बीच संचार साधनों और शैक्षिक प्रदर्शन में सांख्यिकीय रूप से महत्वपूर्ण अंतर है। इस प्रकार हम देखतें है कि जैसे–जैसे संचार साधनों का उपयोग बढ़ता है, विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में भी सुधार होता है।

सारणी–2

शहरी बनाम ग्रामीण : तुलनात्मक विश्लेषण

पैरामीटर	शहरी विद्यार्थी	ग्रामीण विद्यार्थी
नमूना आकार	200 छात्र	200 छात्र
औसत संचार स्कोर (100 में)	78.5	54.2
औसत परीक्षा अंक (100 में)	63.7	63.7
प्रमुख माध्यम	स्मार्टफोन, ब्रॉडबैंड, यूट्यूब, ऐप्स	फीचर फोन, सीमित इंटरनेट, टेलीविजन
उपयोग की आवृत्ति	प्रतिदिन (3 घंटे)	सप्ताह में 2–3 बार (1–2 घंटे)
तकनीकी साक्षरता	अधिकतर छात्रों को डिजिटल ज्ञान	कई छात्रों को केवल बुनियादी जानकारी
शिक्षक सहयोग	ऑनलाइन क्लास, गूगल फॉर्म्स,	ई–कॉन्टेंट सीमित, कभी–कभी मोबाइल पर मैसेज द्वारा
प्रदर्शन पर प्रभाव	सकारात्मक व स्थिर	सीमित, असंगत
मुख्य समस्याएँ	ध्यान भटकाव, अत्यधिक स्क्रीन समय	नेटवर्क समस्या, बिजली कटौती, संसाधन की कमी

सारणी–2 में संचार साधनों की उपलब्धता ही शहरी छात्रों की श्रेष्ठता का मुख्य कारण है। ग्रामीण छात्रों में क्षमता है, पर संसाधनों और अवसरों की कमी उनके विकास में बाधा बनती है। नीतिगत प्रयासों द्वारा इस विभाजन को कम किया जा सकता है। यदि हम इन आंकड़ों को रेखांकन के रूप में प्रस्तुत करें, तो दोनों वेरिएबल्स (संचार स्कोर और शैक्षिक अंक) के बीच एक सकारात्मक रुझान वाली रेखा देखने को मिलेगी।

गुणात्मक अवलोकन – कई ग्रामीण छात्रों ने बताया कि इंटरनेट की धीमी गति, बिजली की अनुपलब्धता, और डिजिटल साक्षरता की कमी उनके ऑनलाइन अध्ययन में बाधा बनती है। शहरी छात्रों ने बताया कि वे यूट्यूब, गूगल क्लासरूम, और मोबाइल एप्लिकेशन का नियमित उपयोग करते हैं जिससे उन्हें विषय की गहराई तक समझने में सहायता मिलती है। शहरी छात्रों को डिजिटल शिक्षण संसाधनों की नियमित और सुगम उपलब्धता के कारण वे विषयवस्तु की गहरी समझ विकसित कर पाते हैं। ग्रामीण छात्रों में संभावनाएँ होते हुए भी तकनीकी और अवसंरचनात्मक सीमाएं उनकी प्रगति में बाधक हैं। यह अंतर भविष्य में शैक्षिक असमानता को और बढ़ा सकता है, यदि प्रभावी नीतिगत हस्तक्षेप न किए जाएँ।

उपरोक्त आंकड़ों और विश्लेषण के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि संचार साधनों की उपलब्धता और उनका प्रभावी उपयोग शहरी विद्यार्थियों के शैक्षिक प्रदर्शन को बेहतर बनाता है। ग्रामीण क्षेत्र में सीमित संसाधनों के कारण इस प्रभाव की तीव्रता कम पाई गई। इसलिए डिजिटल डिवाइड शैक्षिक असमानताओं को बढ़ावा देता है।

चर्चा– इस अध्ययन के परिणामों से यह समझा जा सकता है कि सूचना और संचार तकनीक के माध्यम से शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार संभव है। शहरी विद्यार्थियों के बेहतर प्रदर्शन का मुख्य कारण उनकी डिजिटल साक्षरता, इंटरनेट एवं स्मार्ट डिवाइस की पहुँच है। ग्रामीण क्षेत्र में बुनियादी ढांचे की कमी, आर्थिक बाधाएँ और डिजिटल शिक्षा के प्रति जागरूकता की कमी इस अंतर की प्रमुख वजहें हैं। शिक्षा क्षेत्र में डिजिटल समावेशन को बढ़ावा देने के लिए सरकारी योजनाओं के साथ–साथ निजी संस्थानों का सहयोग भी आवश्यक है। शिक्षक प्रशिक्षण, डिजिटल सामग्री का स्थानीय भाषा में विकास, और स्कूलों में इंटरनेट सुविधा इस दिशा में सहायक होंगे। साथ ही, अत्यधिक डिजिटल उपकरणों के उपयोग से ध्यान विचलित होने और मानसिक तनाव जैसी समस्याओं से बचाव के लिए संतुलित डिजिटल शिक्षा रणनीतियाँ विकसित करनी चाहिए।

निष्कर्ष– यह अध्ययन स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि संचार साधनों का विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धियों पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। शहरी विद्यार्थियों को बेहतर संचार संसाधनों की उपलब्धता के कारण वे शैक्षिक क्षेत्र में बेहतर प्रदर्शन करते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में संचार साधनों की कमी एवं उपयोग की सीमितता के कारण विद्यार्थियों की उपलब्धियों में अंतर देखा गया।

सुझाव– शहरी विद्यार्थियों का संचार साधनों का उपयोग ग्रामीणों की तुलना में अधिक है। संचार साधनों के बेहतर उपयोग से शैक्षिक प्रदर्शन में सुधार होता है। डिजिटल डिवाइड ग्रामीण शिक्षा में बाधा उत्पन्न कर रहा है। इसलिए नीति निर्माताओं को ग्रामीण क्षेत्रों में संचार एवं डिजिटल संसाधनों की पहुँच बढ़ाने पर ध्यान देना चाहिए।

संदर्भ सूची–

1. नायर, एस., और सुरेश, के. (2018), छात्रों के शैक्षणिक प्रदर्शन पर इंटरनेट के उपयोग का प्रभाव। जर्नल ऑफ एजुकेशनल टेक्नोलॉजी, 15(2), 45–56.
2. शर्मा, आर. (2017), ग्रामीण शिक्षा में डिजिटल विभाजन– चुनौतियाँ और समाधान। इंडियन जर्नल ऑफ रूरल डेवलपमेंट, 29(3), 112–125.
3. कुमार, पी., और सिंह, ए. (2019). शैक्षिक तकनीकों तक पहुँच में शहरी–ग्रामीण अंतर। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एजुकेशन एंड डेवलपमेंट, 22(4), 78–89.
4. पटेल, एम. (2020), भारत में डिजिटल विभाजन को बाटना– सरकारी नीतियों की भूमिका। टेक्नोलॉजी एंड सोसाइटी, 11(1), 33–47.
5. देसाई, वी., और मेहता, आर. (2021), डिजिटल शिक्षण उपकरण और शैक्षणिक उपलब्धि बढ़ाने में उनकी प्रभावशीलता। जर्नल ऑफ डिजिटल एजुकेशन, 18(3), 101–115.
6. शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार (2022), भारत में डिजिटल शिक्षा पर वार्षिक रिपोर्ट; नई दिल्ली– सरकारी मुद्रणालय।
7. सिंह,आर.(2020),बिहार के ग्रामीण विद्यालयों में आईसीटी के कार्यान्वयन में चुनौतियाँ। शैक्षिक समीक्षा,14(2),65–77।

रघुवीर सहाय और नई कविता की दृष्टि

मनीष कुमार सिंह*

सारांश :

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जो नयी काव्य–धारा उभरकर सामने आई उसमें रचनाकारों का एक समुदाय लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रति उदासीन था और वह राजनीति–विरोधी होता गया। उस प्रयोगवाद और नयी कविता की संधि के लगभग एकमात्र अत्यंत महत्त्वपूर्ण कवि रघुवीर सहाय ही थे, जिन्होंने अपनी जनतांत्रिक संवेदनशीलता को कायम रखा। नयी कविता के बाद की युवा विद्रोही कविता का मुहावरा बनानेवालों में भी वे अग्रणी कवि हैं।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त जी की कुछ पंक्तियां हैं कि,

''केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए,
उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए।''[1]

उपरोक्त पंक्तियां नई कविता के समर्थ कवि रघुवीर सहाय जी के ऊपर पूर्ण रुप से सही बैठती हैं। सहाय जी 9 दिसंबर 1929 को लखनऊ में जन्में थे एवं वह जनकवि होने के साथ–साथ अच्छे पत्रकार, कुशल आलोचक व कहानीकार भी थे। सन 1951 में लखनऊ विश्वविद्यालय से इन्होंने अंग्रेजी साहित्य में एम0ए0 किया। सहाय जी ने लेखन कार्य तो पहले ही प्रारंभ कर दिया था, परंतु इनकी महत्ता तब बढ़ी जब प्रयोगवादी कवि अज्ञेय जी द्वारा सन 1951 में प्रकाशित दूसरे तारसप्तक में इन्हें शामिल किया गया। सहाय जी को सन 1982 में रचना 'लोग भूल गए हैं' के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार भी प्रदान किया गया।

काव्य कला की अपनी एक स्वायत्त एवं सापेक्ष परंपरा होती है, जो कवियों के द्वारा अन्वेषण और प्रयोग से, नई भाषा और नए शिल्प से आगे बढ़ती है। अतएव रघुवीर सहाय की भाषा और शिल्प का तत्कालीन साहित्य में योगदान एवं इनके साहित्य का तत्कालीन समाज में योगदान कैसा रहा, यह बहुत महत्वपूर्ण विषय है और इस विषय के संदर्भ में सहाय जी की रचनाएं खरी भी उतरीं।

किसी भी व्यक्ति के आस पास का वातावरण कैसा है, इसका उस व्यक्ति पर बहुत प्रभाव पड़ता है। सहाय जी का जीवन, दो महत्वपूर्ण शहरों लखनऊ तथा दिल्ली जो लोकतांत्रिक व्यवस्था के केंद्र हैं, वहां पर व्यतीत हुआ। इसीलिए इन्हें लोकतांत्रिक व्यवस्था के भीतर छिपे बैठे भ्रष्ट सत्ताधारियों और अधिनायकों को भी नजदीक से देखने और समझने का अवसर प्राप्त हुआ। और इनकी कविता 'राष्ट्रगीत' इस बात का सशक्त उदाहरण है, कि कैसे उन्होंने अधिनायकवाद की सच्चाई उजागर करते हुए सत्ताधारियों को लोहे का शीशा दिखाया है। सहाय जी ने जहां एक तरफ कविता **'पढ़िए गीता, बनिए सीता'** के माध्यम से स्त्री को समाज में व्याप्त रूढ़िवादी सोच से मुक्त होने का संदेश दिया है। वहीं दूसरी तरफ कालजयी कविता 'रामदास' के माध्यम से इन्होंने मध्यम वर्गीय समाज की उदासीनता, संवेदनहीनता, निष्क्रियता, अत्याचार सहने एवं गलत का विरोध न करने की उनकी प्रकृति को दर्शाया है। 'आत्महत्या के विरुद्ध' उनकी लंबी अख्यानात्मक कविता है जिसमें माहौल, घटनाएँ, संवाद, मनुष्यता का अंधेरा तथा भारतीय लोकतंत्र में सत्ता का ढांचा आदि ये सब मिलकर एक नई पृष्ठभूमि का निर्माण करते हैं जो लोकतांत्रिक व्यवस्था में सत्ता के दुष्चक्रों की पूर्ण सच्चाई बयां करती है।

सहाय जी की कविताओं में बहुत सारे नाटकीय पात्र जैसे – नेकराम नेहरू, रामदास, हरचरना, मुसद्दीलाल, चंद्रकांत तथा दयाशंकर इत्यादि भी देखने को मिलते हैं। ये सभी पात्र अपनी अपनी वर्गीय विशेषताओं को अपने साथ समाहित किए हुए रहते हैं। इनकी भाषा शैली भी बड़े नाटकीय ढंग की थी जैसे इनकी ये कविता ही देख लीजिए –

''अगर कहीं मैं तोता होता
तोता होता तो क्या होता ?
तोता होता।
होता तो फिर ?

* शोधार्थी (हिन्दी विभाग), पं0दी0द0उ0राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पलहीपट्टी, वाराणसी

होता, 'फिर' क्या ?
होता क्या ? मैं तोता होता ।
तोता तोता तोता तोता
तो तो तो तो ता ता ता ता
बोल पट्ठे सीता राम।''[2]

'आत्महत्या के विरुद्ध' काव्य संग्रह के द्वारा उन्होंने प्रतिपक्षधर्मी समकालीन कविता को राजनीतिक अर्थमयता और मानवीय तात्कालिकता प्रदान की। वे 'शिल्प क्रीड़ा कौतुक' का उपयोग कर रोमांटिक गंभीरता को छिन्न–भिन्न करके नये अर्थ संगठन को जन्म देते हैं, जो जीवन की विडम्बनापूर्ण त्रासदी को प्रत्यक्ष करता है।

''देखो वृक्ष को देखो कुछ कर रहा है
किताबी होगा वह कवि जो कहेगा
हाय पत्ता झर रहा है।''[3]

पतझर में नयी रचना का संकेत उत्पीड़ित–शोषित जीवन में नए बदलाव को भी संकेतित करता है। उनकी कविता में विचार–वस्तु अपनी विविधता में और वैचारिक स्पष्टता में सत्य बनकर उभरती है। उनका मानना था कि विचारवस्तु का कविता में खून की तरह दौड़ते रहना कविता को जीवन और शक्ति देता है, और यह तभी संभव है जब हमारी कविता की जड़ें यथार्थ में हों। उन्होंने कविता की विचारवस्तु को अपने समय और समाज के यथार्थ से तो जोड़ा ही, वे अपने समय के आर–पार देखपाने में समर्थ हुए। वे मानते हैं कि वर्तमान को सर्जना का विषय बनाने के लिए जरूरी है कि रचनाकार वर्तमान से मुक्त हो। वर्तमान की सही व्याख्या कर भविष्य का एक स्वप्न दिखा जिसे साकार किया जा सकता हो। 'सभी लुजलुजे हैं' में कहते हैं –

''खोंखियाते हैं, किंकियाते हैं, घुन्नाते हैं
चुल्लु में उल्लू हो जाते हैं
मिनमिनाते हैं, कुड़कुड़ाते हैं
सो जाते हैं, बैठ जाते हैं, बुत्ता दे जाते हैं
झांय झांय करते है, रिरियाते हैं,
टांय टांय करते हैं, हिनहिनाते हैं
गरजते हैं, घिघियाते हैं
ठीक वक्त पर चीं बोल जाते हैं
सभी लुजलुजे हैं, थुलथुल है, लिब लिब हैं,
पिलपिल हैं, सबमें पोल है, सब में झोल है, सभी लुजलुजे हैं।''[4]

शोषक वर्ग की चालबाजियों को उन्होंने बखूबी नंगा किया और दया, सहानुभूति और करुणा जैसे भावों में न बराबरी और अभिजात्यवादी अहं की गंध महसूस की। मनुष्य और मनुष्य के बीच समानता और सामाजिक न्याय उनके रचनाकर्म का लक्ष्य रहा। नारी के प्रति भी उनका दृष्टिकोण समता का रहा। उनका मानना था कि लोगों के जागते रहने की एक तरकीब यह है कि लोग वास्तविक जनजीवन के विकासोन्मुख तत्वों से अपने को सक्रिय संबद्ध रखें। उन्होंने मध्यवर्गीय समाज को यह अहसास दिलाया कि अधिनायकवादी ताकतों का मुकाबला संगठित होकर ही किया जा सकता है।

नयी कविता के अन्य कवियों की भांति, रघुवीर सहाय ने प्रतीकों, बिम्बों और मिथकों का सहारा बहुत कम लिया है। इन्होंने बोलचाल की भाषा के साधारण शब्दों का प्रयोग अधिक किया है, जिसे डॉ0 नामवर सिंह **'असाधारण साधारणता'** कहते हैं। भाषा में सहज प्रवाह उनकी कविता की प्रमुख विशेषता है। सहाय जी की भाषा, आधुनिक हिन्दी के काव्य की दृष्टि से सफल और एक अलग स्वाद रखती है। न्याय और बराबरी के आदर्श को बहुत ही सूक्ष्म स्तर पर कवि सहाय ने अपनी चेतना में आत्मसात किया। 'हमने देखा' शीर्षक कविता में कहते हैं,

''जो हैं, वे भी हो जाया करते हैं कम
हैं खास ढ़ंग दुख से ऊपर उठने का
है खास तरह की उनकी अपनी तिकड़म
हम सहते हैं इसलिए कि हम सच्चे हैं

हम जो करते हैं वह ले जाते हैं वे
वे झूठे हैं लेकिन सब से अच्छे हैं।"[5]

रघुवीर सहाय उस काव्यतत्व का अन्वेषण करने पर अधिक जोर देते थे जो कला की सौंदर्य परम्परा को आगे बढाता है। उनकी शुरु की कविताओं में भाषा के साथ एक खिलंदड़ापन मिलता है जो संवेदना के साथ बाद में काव्यगत विडंबना के लिए काम आता है। उनकी एक मशहूर कविता 'दुनिया' की भाषा में यही क्रीड़ाभाव देखा जा सकता है,

"लोग या तो कृपा करते हैं या खुशामद करते हैं
लोग या तो ईर्ष्या करते हैं या चुगली खाते हैं
लोग या तो शिष्टाचार करते हैं या खिसियाते हैं
लोग या तो पश्चात्ताप करते हैं या घिघियाते हैं
न कोई तारीफ करता है न कोई बुराई करता है
न कोई हंसता है न कोई रोता है
न कोई प्यार करता है न कोई नफरत
लोग या तो दया करते हैं या घमण्ड
दुनिया एक फंफुदियायी हुई सी चीज हो गयी है।"[6]

इसी तरह के भाषिक खिलंदड़ेपन की एक और कविता है जो मध्यमवर्गीय लोगों के बारे में है, **'सभी लुजलुजे हैं'** जिसमें ऐसे चुने हुए शब्दों का इस्तेमाल किया गया है जो कविता में शायद ही कभी प्रयुक्त हुए हों, भाषा का यह खेल उनकी काव्य यात्रा में गंभीर होते हुए अपने जीवन की बात करते–करते एक और जीवन की बात करने लगता है, कविता 'मेरा एक जीवन है' में,

"मेरा एक जीवन है
उसमें मेरे प्रिय हैं, मेरे हितैषी हैं, मेरे गुरुजन हैं
उसमें मेरा कोई अन्यतम भी है :
पर मेरा एक और जीवन है
जिसमें मैं अकेला हूं
जिस नगर के गलियारों फुटपाथों मैदानों में घूमा हूं
हंसा–खेला हूं
पर इस हाहाहूती नगरी में अकेला हूँ।"[7]

सहाय जी हाहाहूती नगरी जैसे भाषिक प्रयोग से पूरी पूंजीवादी सभ्यता की चीखपुकार व्यक्त कर देते हैं, इसकी गलाकाट स्पर्धा का पर्दाफाश कर देते हैं। कविता के अंत में वो कहते हैं,

"पर मैं फिर भी जिऊंगा
इसी नगरी में रहूंगा
रूखी रोटी खाऊंगा और ठंडा पानी पियूंगा
क्योंकि मेरा एक और जीवन है और उसमें मैं अकेला हूँ।"[8]

सहाय जी की भाषा संबंधी अन्वेषण के बारे में महेश आलोक के शब्दों में कहें तो, **"सहाय निरन्तर शब्दों की रचनात्मक गरमाहट, खरोंच और उसकी आंच को उत्सवधर्मी होने से बचाते हैं और लगभग कविता के लिए अनुपयुक्त हो गये शब्दों की अर्थ सघनता को बहुत हल्के से खोलते हुए एक खास किस्म के गद्यात्मक तेवर को रिटौरिकल मुहावरे में तब्दील कर देते हैं।"[9]**

उनकी कविताओं में लय का एक खास स्थान हमेशा रहा। उनके लय के संबंध में दृष्टि उनके इस कथन से मिलती है, **"आधुनिक कविता में संसार के नये संगीत का विशेष स्थान है और वह आधुनिक संवेदना का आवश्यक अंग है।"[10]** 'भक्ति है यह' कविता उदाहरण के तौर पर लेते हैं,

"भक्ति है यह
ईश–गुण–गायन नहीं है
यह व्यथा है
यह नहीं दुख की कथा है
यह हमारा कर्म है, कृति है
यही निष्कृति नहीं है

यह हमारा गर्व है
यह साधना है– साध्य विनती है।"[11]

भाषा में सहज प्रवाह उनकी कविता की प्रमुख विशेषता है। सहाय जी की भाषा, आधुनिक हिन्दी के काव्य की दृष्टि से सफल और एक अलग स्वाद रखती है। न्याय और बराबरी के आदर्श को बहुत ही सूक्ष्म स्तर पर कवि सहाय ने अपनी चेतना में आत्मसात किया। 'हमने देखा' शीर्षक कविता में कहते हैं,

"जो हैं, वे भी हो जाया करते हैं कम
हैं खास ढ़ंग दुख से ऊपर उठने का
है खास तरह की उनकी अपनी तिकड़म
हम सहते हैं इसलिए कि हम सच्चे हैं
हम जो करते हैं वह ले जाते हैं वे
वे झूठे हैं लेकिन सब से अच्छे हैं।"[12]

पत्रकारिता एवं साहित्य कर्म में रघुवीर सहाय कोई फर्क नहीं मानते थे। पत्रकारिता के क्षेत्र में भी उन्होंने एक नई और क्रिएटिव भाषा गढ़ी। आधुनिक सभ्य समाज के लिए न्याय, समता, स्वतंत्रता, और बंधुत्व जैसे लोकतांत्रिक मूल्यों पर उनकी गहरी आस्था थी। असमानता और अन्याय का प्रतिकार सहाय जी की रचनाओं का संवेदनात्मक उद्देश्य रहा है, उन्होंने जहां भी इसका अभाव देखा, उसके खिलाफ आवाज उठाई।

"निर्धन जनता का शोषण है
कहकर आप हंसे
लोकतंत्र का अंतिम क्षण है
कहकर आप हंसे
सबके सब हैं भ्रष्टाचारी
कहकर आप हंसे
चारों ओर बड़ी लाचारी
कहकर आप हंसे
कितने आप सुरक्षित होंगे मैं सोचने लगा
सहसा मुझे अकेला पाकर फिर से आप हंसे।"[13]

रघुवीर सहाय की काव्य भाषा बोलचाल की भाषा है। पर इसी सहजपन में यह जीवन के यथार्थ को, उसके कटु एवं तिक्त अनुभव को पूरी शक्ति के साथ अभिव्यक्त करने में समर्थ है। साथ ही यह देख कर आश्चर्य होता है कि अनेक कविताएं पारंपरिक छंदों के नये उपयोग से निर्मित हैं। साठोत्तरी दशक के हिंदी कवियों में रघुवीर सहाय ऐसे कवि हैं, जिन्होंने बड़ी सजगता और ईमानदारी से अपने काव्य में भाषा का प्रयोग किया है। वे जनता और उसकी समस्याओं से सम्बद्ध कवि हैं। उनका उद्देश्य अपने समय की विद्रूपता और विसंगतियों को उद्घाटित करना रहा है। वे विद्रूपता और विसंगतियों का चित्रण इस प्रकार करते हैं कि लोक–चेतना जागृत हो। वे अपनी रचनाओं के माध्यम से न सिर्फ आज की सामंती–बुर्जुआ–पूंजीवादी व्यवस्था को, जो लोकतंत्र के नाम पर सत्ता हड़पने के लिए तरह–तरह के हथकंडे अपनाती है, बल्कि जिसके उत्पीड़न–शोषण, अन्याय–अत्याचार के कारण संपूर्ण समाज में दहशत और आतंक छा गया है, को नंगा करते हैं।

जीवन भर जनता की समस्याओं को अपनी लेखनी के माध्यम से उजागर करने वाले जनकवि रघुवीर सहाय जी का निधन 30 दिसंबर 1990 में दिल्ली में हुआ था परंतु अपनी कविताओं के माध्यम से उन्होंने जिस प्रकार पूंजीपति वर्ग की बढ़ती मनमानी को लताड़ लगाई एवं जिस तरह समाज के मध्यमवर्गीय तबके या लघुमानव की समस्याओं, संवेदनाओं, भावनाओं तथा जीवन के प्रत्येक पहलू को प्रदर्शित किया वह आज भी सराहनीय है। इनकी कविताओं के बारे में प्रसिद्ध कवि मंगलेश डबराल लिखते हैं – **"उनकी कम से कम बीस कविताएं ऐसी हैं जिनमें मनुष्य पर आने वाले संकटों के बारे में एक प्रोफेटिक विजन मिलता है, ऐसी चेतावनियां मिलती हैं, जैसी उनके पूर्ववर्ती कवि मुक्तिबोध की रचनाओं में मिलती हैं।"[14]**

सन्दर्भ

1. मैथिलीशरण गुप्त, 'भारत–भारती, 'भविष्यत खण्ड', www.kavitakosh.org
2. रघुवीर सहाय, 'प्रतिनिधि कविताएँ', सं0 कृष्ण कुमार, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं0 1994, पृष्ठ 114
3. रघुवीर सहाय, 'आत्महत्या के विरूद्ध', सं0 कृष्ण कुमार, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं0 2003, पृष्ठ 56
4. रघुवीर सहाय, 'सीढ़ियों में धूप', भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी, सं0 1967, पृष्ठ 141
5. रघुवीर सहाय, 'प्रतिनिधि कविताएँ', सं0 कृष्ण कुमार, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं0 1994, पृष्ठ 56
6. रघुवीर सहाय, 'सीढ़ियों में धूप', भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी, सं0 1967, पृष्ठ 144
7. रघुवीर सहाय, 'प्रतिनिधि कविताएँ', सं0 कृष्ण कुमार, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं0 1994, पृष्ठ 88
8. रघुवीर सहाय, 'प्रतिनिधि कविताएँ', सं0 कृष्ण कुमार, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं0 1994, पृष्ठ 90
9. रामस्वरूप चतुर्वेदी, 'नई कविता एक साक्ष्य', लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2015, पृष्ठ 45
10. डॉ0 रामविलास शर्मा, 'नई कविता और अस्तित्ववाद', राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ 32।
11. रघुवीर सहाय, 'सीढ़ियों में धूप', भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी, सं0 1967, पृष्ठ 112
12. रघुवीर सहाय, 'हमने देखा है', सं0 कृष्ण कुमार, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं0 1994, पृष्ठ 41
13. रघुवीर सहाय, 'आपकी हँसी', 'हँसो, हँसो, जल्दी हँसो', www.kavitakosh.org
14. रामस्वरूप चतुर्वेदी, 'नई कविता एक साक्ष्य', लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2015, पृष्ठ 45

जैन पुराणों में शिक्षा की महत्ता एवं उपादेयता

काजल गिरि*

भारतीय वाङ्मय में परम्परागत पुराणों के समानान्तर जैन पुराणों की अविच्छिन्न धारा दिखलायी देती है। जैन पुराण प्राचीन भारतीय इतिहास के अजस्र स्रोत हैं। इन पुराणों का उद्भव आदि तीर्थंकर ऋषभदेव से माना जाता है जो गुरु–शिष्य परम्परा द्वारा विकसित हुआ। प्राचीन काल से मानव जीवन में शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। अशिक्षित मनुष्य की गणना पशुवत् रही है। समाज में मर्यादित एवं प्रतिष्ठित जीवन के लिए मनुष्य का शिक्षित होना अनिवार्य है। मनुष्य का मानसिक, चारित्रिक एवं अध्यात्मिक विकास का माध्यम शिक्षा ही रहा है। शिक्षा द्वारा मनुष्य का बहुमुखी विकास हुआ है। अतः हमारे ऋषि–मुनियों ने शिक्षा का गुणगान किया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि जैनाचार्यों ने भी शिक्षा को समाज के लिए महत्वपूर्ण माना है। यद्यपि जैन पुराणों में शिक्षा से सम्बन्धित विस्तृत विवरण का अभाव है, तथापि उनके अध्ययन से शिक्षा की महत्ता एवं उपादेयता पर यथेष्ट प्रकाश पड़ता है।

शिक्षा की महत्ता – जैन पुराणों में शिक्षा के महत्त्व पर विशेष बल दिया गया है। महापुराण में विद्या के महत्त्व को प्रदिपादित करते हुए उल्लिखित है कि शरीर, अवस्था तथा शील विद्या से विभूषित हो जाने पर मनुष्य–जीवन सार्थक हो जाता है। इस संसार में विद्वान् पुरुष तथा विदुषी महिलाएं सम्मान एवं श्रेष्ठ पद को प्राप्त करते हैं। इस सम्बन्ध में यह भी कहा गया है कि विद्या मनुष्यों का यश, कल्याण तथा मनोरथ पूर्ण करती है। इसी लिए विद्या को कामधेनु, चिन्तामणि, त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ तथा काम) का फल कथित है। विद्या को मनुष्य के जीवन का मूलाधार सिद्ध करते हुए वर्णित है कि विद्या ही मनुष्य का बन्धु, मित्र, कल्याणकारी, साथ–साथ जाने वाला धन तथा सब प्रयोजनों को सिद्ध करने वाली है।[1] जैन पुराणों के शिक्षा सम्बन्धी आदर्श उस समय के जैनेतर साक्ष्यों से भी ज्ञात होता है। डॉ० राधा कुमुद मुकर्जी का विचार है कि शिक्षा बौद्धिक एवं नैतिक उन्नति प्रदान करती है। धार्मिक एवं आध्यात्मिक जीवन में शिक्षा का विशेष महत्त्व है।[2] डॉ० अनन्त सदाशिव अल्तेकर का विचार है कि प्राचीन भारत में चरित्र–निर्माण, प्रतिभाशाली व्यक्तित्व, संस्कृति की रक्षा तथा सामाजिक एवं धार्मिक कर्त्तव्यों को सम्पन्न करने के लिए शिक्षा को समाज का अनिवार्य अंग माना जाता था।[3]

जैन पुराणों के अवलोकन ध्यान देने योग्य है कि शिक्षा के महत्त्व का निष्कर्ष यही है कि शिक्षा शरीर, मन एवं आत्मा को समर्थ बनाते हुए अन्तर्निहित श्रेष्ठतम महान् गुणों का विकास कर अन्तर्भूत दैवी–गुणों का विकास करती है। निरन्तर स्वाध्याय से मनुष्य की अन्तर्निहित शक्तियों का प्रादुर्भूत होता है। शिक्षा से शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक शुचिता, बौद्धिक प्रखरता, आध्यात्मिक दृष्टि, नैतिक बल, कर्मठता तथा सहिष्णुता की प्राप्ति होती है। सांस्कृतिक विरासत की प्राप्ति, ज्ञानार्जन, समस्याओं का समाधान, आध्यात्मिक तत्त्वों का अन्वेषण, मानसिक क्षुधा की शान्ति, कला–कौशल का परिज्ञान, आचार–विचार का परिष्कार, शाश्वत सुख की उपलब्धि, त्याग, संयम, कर्तव्यनिष्ठा, वैयक्तिक जीवन का परिष्कार तथा समाज की उन्नति शिक्षा से ही होती है। शिक्षा से मनुष्य का सर्वाङ्गीण विकास होता है।

2. शिक्षा सम्बन्धी संस्कार या क्रिया : भारतीय परम्परा एवं पारम्परिक पुराणों के समान ही जैन पुराणों में भी शिक्षा विषयक संस्कारों या क्रियाओं का उल्लेख है। शिक्षा सम्बन्धी मुख्यतया अधोलिखित चार संस्कारों या क्रियाओं का वर्णन उपलब्ध होता है–

(i) लिपि संस्कार
(ii) उपनीति या उपनयन संस्कार
(iii) व्रतचर्या संस्कार
(iv) व्रतावतरण या समावर्त्तन अथवा दीक्षान्त संस्कार ।

लिपि संस्कार : जैन पुराणों के वर्णनानुसार जब बालक पाँच वर्ष का हो जाए तब उसका अक्षर ज्ञान कराया जाता था। इसके लिए लिपि क्रिया संस्कार किया जाता था। लिपि संस्कार के बाद ही बच्चे को अक्षर तथा लिपि सिखायी जाती थी। महा पुराण में लिपि संस्कार के विषय में वर्णित है कि शिशु के जन्म के पाँचवें वर्ष

* शोध–छात्रा, प्राचीन इतिहास, पुरातत्त्व एवं संस्कृति विभाग, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

में इस क्रिया को सम्पन्न करना चाहिए। इसकी विधि यह थी कि यथाशक्ति पूजन कर, सुवर्ण की पट्टी पर लिखने के पूर्व हृदय में, 'श्रुतदेवी' का स्मरण कर, दाहिने हाथ से शिशु को वर्णमाला (अ, आ आदि) तथा अंकों (इकाई, दहाई आदि) को लिखने का उपदेश देना चाहिए।[4] सिद्ध नमः' से मंगलाचरण प्रारम्भ करते थे। यह 'सिद्ध मात्रिका लिपि' थी[5], जिसमें स्वर, व्यञ्जन, समस्त विद्या, संयुक्ताक्षर, बीजाक्षर अकार से हकार तक विसर्ग, अनुस्वार, जिह्वा– मूलीय, उपध्यानीय तथा शुद्धाक्षर होते थे।[6]

उपनयन : लिपि संस्कार के उपरान्त बालक घर पर ही व्रती गृहस्थ द्वारा अध्ययन करता था। जब वह आठवें वर्ष में प्रवेश करता था, तब उसका उपनीति या उपनयन संस्कार किया जाता था। इसमें केश–मुण्डन, व्रतबन्धन तथा मौज्जीबन्धन क्रियाएँ होती थीं। बालक यज्ञोपवीत धारण करके भिक्षा माँगता था। इस क्रिया के बाद बालक को गुरु के पास शिक्षा ग्रहण करने के लिए भेजा जाता था। बालक का विधिवत् अध्ययन कार्य इस क्रिया के उपरान्त प्रारम्भ होता था।[7]

i. **व्रतचर्या क्रिया** : इस क्रिया का तात्पर्य विद्याध्ययन के समय संयमित एवं कठोर जीवन व्यतीत करने से है। इसके द्वारा विद्यार्थी अपना ध्यान एक मात्र विद्यार्जन की ओर केन्द्रित करता था।[8]

ii. **व्रतावतरण क्रिया** : विद्यार्थी जीवन की समाप्ति पर विद्याध्ययन कर चुकने पर इस क्रिया को करते थे। इस क्रिया को समावर्तन संस्कार कह सकते है। इस क्रिया के बाद विद्यार्थी ब्रह्मचर्य आश्रम का परित्याग कर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करते थे।[9] इस क्रिया को आजकल प्रचलित 'दीक्षान्त' से समीकृत कर सकते हैं। इस अवसर पर शिष्य अपने गुरु को गुरुदक्षिणा भी प्रदान करता था।[10]

विद्या प्राप्ति का स्थान : आलोचित पुराणों के रचनाकाल में विद्याध्ययन मौखिक एवं लिखित दोनों प्रकार का होता था। छोटे बच्चों को खड़िया एवं मिट्टी के टुकड़े से वर्णमाला सिखायी जाती थी।[11] जब बालक छोटा होता था. तब उसका पिता ही उसका शिक्षक होता था। बालक को प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही उसका पिता प्रदान करता था।[12] यदि पिता योग्य होता था, तो आस–पास के बच्चे भी उसके पास चले आते थे। इसके बाद बालक विद्यालय जाता था। पद्म पुराण में उल्लिखित है कि राज्य की ओर से शिक्षा के लिए विद्याशाला (विद्यालय) होता था।[13] इसके साथ ही वन में भी शिक्षण–स्थल के रूप में आश्रम होते थे, जहाँ पर विद्यार्थी विद्याध्ययन करते थे।[14] विशिष्ट विद्वानों को राजा लोग अपने यहाँ रखते थे।[15] पद्म पुराण में ही वर्णित है कि विद्यार्थी अध्ययनार्थं गुरु के घर जाते थे।[16] हमारे जैन पुराणों के रचना–काल के अन्य साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि उस समय आश्रम या गुरुकुल, बिहार तथा मठ में शिक्षा का प्रबन्ध था।[17]

गुरु का महत्त्व : पुराण में विद्या देने वाले को गुरु[18], उपाध्याय[19], आचार्य[20], विद्वान्[21] यति[22] कथित है। पद्म पुराण में गुरु को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है।[23] गुरु का सभी सम्मान करते थे, जिससे उसकी प्रतिष्ठा स्थापित थी। शिष्य के अभिभावक भी गुरु का आदर–सत्कार करते थे।[24] हरिवंश पुराण में गुरु की महत्ता प्रदर्शित करते हुए यहां तक कहा गया है कि यदि कोई एक अक्षर या आधा पद या एक पद का उपदेश देता है तो भी उसका महत्त्व गुरु के समान है और यदि कोई भी ऐसे गुरु को विस्मृत कर देता है, तो उसे पापी की संज्ञा दी जाती है परन्तु यदि कोई धर्मोपदेशदाता को विस्मृत कर देता है तो ऐसे मनुष्य की निम्न– तर गति होती है।[25] महापुराण में वर्णित है कि गुरु हृदय में रहता है, चूँकि वचन हृदय से निकलते हैं, इसलिए वचनों में गुरु संस्कार करते हैं।[26] जैनेतर ग्रन्थों में गुरु को शिष्य का 'मानस–पिता' कहा गया है।[27]

गुरु के गुण : पद्म पुराण में गुरु के गुणों का उल्लेख है । उसे महाविद्याओं से युक्त, पराक्रमी, प्रशान्तमुख, धीरवीर, सुन्दर, शुद्ध, अल्पपरिग्रह का धारक, धर्म के रहस्य का ज्ञाता, अणुव्रती, गुणी, मृदुभाषी, कला–ममंश, शिक्षा द्वारा आजी– विका व्यतीत करने वाला कहा गया है।[28] महापुराण में गुरु के गुणों (लक्षणों) को सुन्दर ढंग से वर्णित किया गया है। गुरु सदाचारी, स्थिर बुद्धिवाला, जितेन्द्रिय, सौम्य, भाषण में प्रवीण, गम्भीर, प्रतिभायुक्त, सुबोध व्याख्यान देने वाला, प्रत्युत्पन्न बुद्धिवाला, तर्कप्रेमी, दयालु, प्रेमी, दूसरे के अभिप्राय को समझने वाला, समस्त विद्याओं का अध्ययन करने वाला, धैर्यवान, वीर, विद्वान, वाङमयों का ज्ञाता, गम्भीर, मृदु, सत्य एवं हितकारी वचन बोलने वाला, सत्कुल में जन्म लेने वाला, अप्रमद्य, परहित साधन करने वाला, धर्मकथावाचक, महाविद्याओं से युक्त, पराक्रमी प्रशान्त मुख वाला, सुन्दर आकृति वाला, शुद्ध, अल्पपरिग्रह. वाला, धर्म के रहस्य का ज्ञाता, अणुव्रती, गुणी, भिक्षा द्वारा आजीविका व्यतीत करने वाला होता था।[29]

शिष्य के गुण : पद्म पुराण में वर्णित है कि विद्या प्राप्ति स्थिर चित्त वालों को ही होती है। इसलिए शिष्य का प्रथम लक्षण है कि वह स्थिर–चित्त वाला हो।[30] आलोच्य महा पुराण में शिष्य के गुणों के विषय में वर्णित है कि शिष्य में विनयशीलता, अध्ययन एवं अध्यापक के प्रति श्रद्धा, विषयों की ग्रहणशीलता, जिज्ञासु– वृत्ति, शुश्रूषा, स्मरण शक्ति, तर्कण शक्ति, पाठों के श्रवण में सतर्कता, विषयों को धारण करने की शक्ति, अपोह (ज्ञान

के आधार पर प्राबल्य एवं अकरणीय का त्याग), युक्तिपूर्वक विचार–सामर्थ्य, सहज प्रतिभा, संयम और अध्यवसाय होना चाहिए।[31]

शिष्य के दोष : पद्म पुराण में पात्रापात्र शिष्यों का विश्लेषण किया गया है। जैसे सूर्य का प्रकाश उल्लू के लिए व्यर्थ होता है वैसे ही अपात्र को प्रदत्त विद्या व्यर्थ होती है।[32] महापुराण में शिष्यों के दोषों का वर्णन किया गया है।

शिष्यों में विषयी, विषयासक्त, हिंसकवृत्ति, कठोर परिणामी निःसार का ग्राहक, अर्थ– ज्ञान की न्यूनता, धूर्तता, कृतघ्ननता, उदण्डता, प्रमादी, ग्रहण शक्ति का अभाव, दुर्गुण ग्राहकता, प्रतिभा की कमी, हठग्राहिता, धारणशक्ति की न्यूनता तथा स्मरणशक्ति का अभाव आदि दुर्गुण कथित हैं।[33]

गुरु–शिष्य सम्बन्ध : जैन पुराणों के अनुशीलन से गुरु–शिष्य सम्बन्ध पर प्रकाश पड़ता है। पद्म पुराण में गुरु–शिष्य के आत्मिक सम्बन्ध का उल्लेख मिलता है। गुरु–शिष्य में इतने प्रगाढ़–सम्बन्ध होते थे कि शिष्य गुरु से अपनी सभी बातों को बता देता था। इससे यदि कोई बात शिष्य के प्रति अहितकर होती थी तो गुरु उसको सुरक्षा का मार्ग बता देता था।[34] गुरु के सामने शिष्य व्रत लेते थे यदि कोई शिष्य इस व्रत को भंग करता था तो ऐसी मान्यता थी कि उसे भारी कष्ट उठानी पड़ता था।[35] महापुराण में गुरु–शिष्य की परम्परा को विशाल–प्रवाह के समान कथित है।[36] वस्तुतः गुरु–शिष्य में पिता–पुत्र के समान सम्बन्ध होता था। इसी नात्मीयता के कारण गुरु शिष्य से कहता है कि– हे शिष्य तू ही मेरा मन और तू ही मेरी जीभ है।[37] जैनाचार्यों ने गुरु–शिष्य के सम्बन्ध को यावज्जीवन निर्वाह करने का निर्देश दिया है। गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने पर भी गुरु से प्रतिदिन मिलने को निर्देशित किया गया है और कहा गया है कि उनसे अपना हित–अहित बताया करें जिससे गुरुओं द्वारा शिष्यों की समस्याओं का समाधान होता रहे।[38]

महापुराण में वर्णित है कि गुरु के पास जो शिष्य रहते थे, उनमें से योग्य शिष्य को गुरु अपना उत्तराधिकारी बनाता था। यह शिष्य सभी विद्याओं का ज्ञाता तथा मुनियों द्वारा समादृत होता था। यह शिष्य गुरु का उत्तराधिकारी होने पर गुरुवत् आचरण तथा समस्त संघों का पालन करता था।[39] इस प्रकार हम देखते हैं कि गुरु का उत्तराधिकारी योग्य एवं कुशल शिष्य होता था। उस समय गुरु अपने शिष्यों में से योग्य शिष्य को उपाध्याय पद पर नियुक्त करता था।[40] उपर्युक्त विवरणों से यह सुनिश्चित हो जाता है कि हमारे आलोच्य पुराणों के प्रणयन काल में गुरु–शिष्य सम्बन्ध बहुत ही उत्तम थे। वे एक दूसरे के सुख–दुःख में भाग लेते थे और उनमें आपस में बहुत ही आत्मीय सम्बन्ध होते थे।

गुरु–सेवा : पद्म पुराण के परिशीलन से गुरु–सेवा पर प्रकाश पड़ता है। सामान्य से राजपुत्र तक सभी शिष्य गुरु की सेवा करते थे।[41] इससे यह स्पष्ट होता है कि उस समय समाज में गुरु की सेवा करना सभी शिष्यों के लिए अनिवार्य था। इससे धनी और निर्धन छात्रों में हीन भावना की उत्पत्ति नहीं होती थी और सभी में मेल–मिलाप था। उनमें आपस में भेद–भाव की भावना नहीं होती थी।

गुरु–दक्षिणा : जैन पुराणों के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि शिष्य अध्ययन के उपरान्त अपने गुरु को यथाशक्ति गुरु–दक्षिणा देते थे[42] परन्तु गुरु–दक्षिणा के लिए कोई सीमा निर्धारित नहीं की गयी थी।

स्त्री–शिक्षा : जैन पुराणों के रचनाकाल में स्त्रियों की शिक्षा का ह्रास हो गया था।[43] जैनाचार्यों ने उनकी स्थिति के उत्थान का प्रयत्न किया। जैन पुराणों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उस समय स्त्रियों को भी शिक्षा प्रदान की जाती थी।[44] जैनाचार्यों ने पुत्र के समान पुत्रियों की शिक्षा पर बल दिया है।[45] हरिवंश पुराण में कन्याओं को शास्त्रों में पारंगत तथा प्रतियोगिता में विजयी प्रदर्शित किया गया है।[46] जैन पुराणों में वर्णित है कि लड़कियाँ गणित, वाङ्मय (व्याकरण, छन्द एवं अलंकारशास्त्र) तथा समस्त विद्याओं में निपुण होती थीं।[47] कन्याओं के शिक्षा–ग्रहण करने के उपरान्त वयस्क होने पर उनका विवाह होता था।[48] अतः स्पष्ट है कि जैन पुराणों के रचनाकाल में स्त्री–शिक्षा का विशेष प्रचार–प्रसार था।

सह–शिक्षा : जैन पुराणों के अवलोकन से यह निष्कर्ष निकलता है कि लड़के और लड़कियाँ साथ–साथ अध्ययन किया करते थे। पिता अपने पुत्र–पुत्रियों को साथ–साथ प्रारम्भिक शिक्षा खड़िया, मिट्टी के टुकड़ों से घर पर ही देता था।[49] हमें ऐसे भी उदाहरण उपलब्ध होते हैं जब गुरु के घर में लड़के और लड़कियाँ साथ–साथ अध्ययन करते थे। पद्म पुराण के वर्णनानुसार चित्तोत्सवा तथा पिङ्गल गुरु के यहाँ साथ–साथ शिक्षा ग्रहण करते थे। वे दोनों परस्पर प्रेम में आबद्ध हो जाने के कारण भाग गये और गान्धर्व विवाह कर लिया, जिससे उन्हें विद्या की प्राप्ति नहीं हुई।[50] चूँकि उस समय लड़कियों के लिए पृथक् से पढ़ने की व्यवस्था का कोई उल्लेख नहीं मिलता है और अनेक विदुषी एवं प्रतिभाशाली कन्याओं का दृष्टान्त उपलब्ध

है। ऐसी स्थिति में यह कहा जा सकता है कि आलोचित जैन पुराणों के प्रणयनकाल में सहशिक्षा प्रचलित थी।

पाठ्यक्रम : उपर्युक्त अनुच्छेदों से स्पष्ट है कि पाँच वर्ष के बालक–बालिकाओं को लिपिज्ञान एवं सामान्य भाषा सिखायी जाती थी। गणित का थोड़ा–बहुत ज्ञान कराया जाता था। आठ वर्ष तक बालक घर पर ही सामान्य–शिक्षा ग्रहण करते थे। उपनयन संस्कार के बाद वे गुरु के पास शास्त्रीय ज्ञानार्जन नाथ जाते थे। जैन पुराणों में अधोलिखित पाठ्यक्रम या शास्त्रों का उल्लेख मिलता है।[51]

चार वेद (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद), शिक्षा (उच्चारण विधि), कल्प, व्याकरण, छन्द, ज्योतिष, निरुक्ति, इतिहास, पुराण, मीमांसा, न्यायशास्त्र, कामशास्त्र, हस्ति एवं अश्वशास्त्र, आयुर्वेद, निमित्तशास्त्र, शकुनशास्त्र, तंत्रशास्त्र, मंत्रशास्त्र, लक्षणशास्त्र, कलाशास्त्र, राजनीतिशास्त्र तथा धर्मशास्त्र आदि हैं। हमारे आलोचित पुराणों के रचनाकाल के अन्य साक्ष्यों से भी पाठ्यक्रम पर प्रकाश पड़ता है। बाणभट्ट ने कादम्बरी में पैंतालिस विषय, दण्डिन ने बारह और राजशेषर ने इकहत्तर विषयों का उल्लेख किया है।[52] अस्तु स्पष्ट है कि जैन पुराणों में शिक्षा के वैशिष्टग पर यथेष्ट प्रकाश डाला गया है जो भारतीय सांस्कृतिक चेतना को उद्घाटित करता है।

सन्दर्भ सूची

1. महापुराण, 16/97–101
2. राधा कुमुद मुकर्जी–ऐशेण्ट इण्डियन एजूकेशन, दिल्ली, पृ0 366
3. अल्तेकर–एजूकेशन इन ऐशेण्ट इण्डिया, बनारस, 1948, पृ0 326
4. महापुराण 16/103–104, 38/102–103
5. तत्रैव, 16/105
6. तत्रैव, 16/106–108
7. तत्रैव, 38/104–106, 40/156–158, 39/94–95, हरिवंश, 42/5
8. तत्रैव, 38/109–112
9. तत्रैव, 38/121–126
10. पद्म पुराण, 39/163, हरिवंश 17/79
11. तत्रैव, 26/7
12. महापुराण, 16/110, 16/118
13. पद्म पुराण 39/162
14. तत्रैव 8/333–334
15. तत्रैव 39/160
16. तत्रैव, 26/5–6
17. व्रजनाथ सिंह यादव–वही पृ0 403
18. पद्म पुराण 26/6
19. तत्रैव, 39/163
20. तत्रैव, 25/53
21. पद्म पुराण 39/160
22. तत्रैव, 39/303
23. तत्रैव, 6/262–264
24. तत्रैव, 39/163
25. हरिवंश पुराण 21/156
26. महापुराण, 43/18
27. बौधायन धर्मसूत्र, 28/39–39
    गौतम धर्मसूत्र, 1/10, मनु0 2/170
28. पद्म पुराण, 100/33–38
29. महापुराण, 1/126–132
30. पद्म पुराण 26/7
31. महापुराण 1/165, 1/146, 38/109–118
32. पद्म पुराण 100/52

33. महापुराण 38/109–118
34. पद्म पुराण 15/112–123
35. तत्रैव, 97/160
36. महापुराण, 1/104
37. महापुराण 43/71
38. तत्रैव, 41/14
39. तत्रैव, 18/173–174
40. तत्रैव, 67/317
41. पद्म 100/81, तुलनीय–गोपथ ब्राह्मण 1/2/1–8, महाभारत 5/36/52
42. वही 39/163, 11/51, हरिवंश 17/79
43. यादव–वही, पृ0 402
44. महापुराण 16/98
45. तत्रैव, 16/102, 108/115
46. हरिवंश 21/133
47. पद्म पुराण 15/20, 24/5 महा 16/105–117
48. तत्रैव, 24/121, हरिवंश 45/37, महापुराण 63/8
49. पद्म पुराण, 26/5
50. तत्रैव, 26/5–7
51. महापुराण, 2/48, 16/111–125, 41/141–155
52. यादव–तत्रैव, पृ0 400, मिश्र देवी प्रसाद, जैन पुराणों का सांस्कृतिक अध्ययन हिन्दुस्तानी ऐकेडमी, 1988, पृ0 231–238

उच्च प्राथमिक स्तर पर विद्यार्थियों द्वारा की जाने वाली कुसंक्रियाएँ : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ. रोबिना*

प्रस्तावना

शिक्षा की उपयोगिता व्यक्ति व समाज दोनों के ही सन्दर्भ में है, व्यक्ति की शिक्षा को इसलिए महत्वपूर्ण माना गया है क्योंकि शिक्षा से व्यक्ति का आचरण, विचार व व्यवहार सुसंस्कृत हो जाते हैं, उसका जीवन उत्कृष्ट हो जाता है, जिसके फलस्वरूप समाज का विकास स्वतः ही हो जाता है, क्योंकि शिक्षा समाज को नियंत्रित व संस्कारित करने वाली प्रक्रिया है।

प्राथमिक शिक्षा स्तर को शिक्षा व्यवस्था का प्रथम स्तर कहा जाता है प्राथमिक शिक्षा 6 या 7 वर्ष की आयु 14 वर्ष की आयु तक चलती है। अतः 1 से लेकर कक्षा 8 तक की शिक्षा को प्राथमिक शिक्षा कहा जा सकता है। शिक्षा आयोग (1964–66) ने कक्षा 1 से 5 तक की शिक्षा को निम्न प्राथमिक शिक्षा तथा कक्षा 6 8 तक की शिक्षा को उच्च प्राथमिक शिक्षा कहा है। उच्च प्राथमिक शिक्षा में 11 से 14 आयु वर्ष के बालक बालिका आते है। प्राथमिक शिक्षा बालकों को अपने सामाजिक एवं विद्यालय वातावरण से अनुकूलन करने योग्य बनाती है, उसमें परस्पर सद्भावना व सहयोग की भावना विकसित करती है, उनका शारीरिक एवं मानसिक विकास करती है, उन्हें आत्मनिर्भर बनाती है, उनके नागरिकता का गुण विकसित कर नैतिकता की भावना उत्पन्न करती है।

कोठारी आयोग (1964–66) ने अपने प्रतिवेदन में प्राथमिक शिक्षा के उद्देश्यों के संबंध में लिखा है कि आधुनिक प्राथमिक शिक्षा का उद्देश्य बालक को भावी जीवन की परिस्थितियों का सामना करने में समर्थ बनाने के लिये शारीरिक व मानसिक प्रशिक्षण देकर उसको इस प्रकार से विकसित करना है कि वह वास्तव में उपयोगी नागरिक बन सके।

मुदालियर आयोग ने शिक्षा की इस भूमिका पर बल देते हुए कहा है कि "अच्छी शिक्षा का मूल तत्व यह है कि वह अपने विद्यार्थियों की रूचियों और क्षमताओं का पता लगाए विद्यार्थियों को उनसे अवगत कराए और यह बताएं कि उनका अधिकतम विकास किस प्रकार सम्भव है ताकि बालक का घर, विद्यालय, निजी एवं सामाजिक समायोजन भली प्रकार हो सके, साथ ही प्रधानाध्यापक एवं अध्यापक भी अपने विद्यार्थियों को अधिक बेहतर ढंग से समझ सकें।

बालक का जन्म उसका पालन पोषण एवं विकास परिवार में होता है तथा उसके सामाजीकरण की शुरुआत भी परिवार से ही होती है। बालक की शिशु अवस्था एक स्वर्णिम काल है जिसमें मानव व्यक्तित्व की आधारशिला रखी जाती है। बालक के जीवन के प्रथम 6 वर्ष उसके घर में परिवार के सदस्यों के बीच में ही बीतते है। जो कुछ भी वह सीखता है परिवार से ही सीखता है। 6 वर्ष की आयु के उपरान्त बालक परिवार के साथ–साथ समाज व समुदाय के सम्पर्क में आता है। परिवार और समुदाय के साथ–साथ बालक के व्यक्तित्व पर विद्यालय के वातावरण का भी प्रभाव पड़ता है। विद्यालय का पाठ्यक्रम शिक्षण प्रक्रिया, विद्यालय अनुशासन, सहपाठियों का आचार व्यवहार बालक के अनुकूल होते हैं तो इसका प्रत्यक्ष प्रभाव स्पष्ट रुप से बालक के व्यवहार में दिखाई देता हैं। उच्च प्राथमिक स्तर पर शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थी किशोरावस्था के होते है। इस अवस्था को परिवर्तन का काल कहा गया है। इस स्तर पर बालक में अनेक शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक, नैतिक और चारित्रिक परिवर्तन होते हैं। इन परिवर्तनों के साथ आवश्यकताएं सबसे ज्यादा बलवती होती हैं और इन आवश्यकताओं की पूर्ति भी किया जाना आवश्यक है।

मास्लों ने व्यक्ति की आवश्यकताओं को सात भागों में विभाजित किया है जिसमें सबसे पहले वह अपनी शारीरिक आवश्यकताओं जैसे– भूख प्यास, थकान, नींद आदि की पूर्ति करता है, फिर वह डर, भय, चिंता आदि से सुरक्षा भी चाहता है। इन सभी के साथ– साथ वह अपने परिवार, समाज, संगी साथी आदि से प्रेम और सम्मान की इच्छा रखता है। जब इन आवश्यकताओं की प्राप्ति हो जाती है तो बालक अपने घर–परिवार, विद्यालय, समाज में अपना समायोजन कर लेता है और उन्हीं के अनुरूप व्यवहार करता है।

* असिस्टेण्ट प्रोफेसर, बी0एड्0 विभाग, वीएनएस महाविद्यालय, परशुरामपुर, चन्दौली (उ0प्र0)

किन्तु जब बालक को इन इच्छाओं या आवश्यकताओं की प्राप्ति नहीं होती है तो उसे एक अप्रिय अनुभूति होती है। जिसे कुण्ठा, असन्तोष, निराशा, हताशा के रुप में दिखाई देती है। इसी प्रकार जब व्यक्ति को अपनी इच्छाओं, आवश्यकताओं और रूचियों के प्रतिकूल स्थितियों का सामना करना पड़ता है तो उसके अन्दर मानसिक द्वन्द्व (Couflict) उत्पन्न हो जाता है और इस प्रकार कुण्ठा और मानसिक द्वन्द्व के परिणाम स्वरूप व्यक्ति में मानसिक तनाव उत्पन्न होता है। इस तनाव के कारण व्यक्ति के मन में एक प्रकार की उथल–पुथल मच जाती है जिसे दूर करने के लिए वह प्रयास करता है। यदि उसका यही प्रयास सफल रहता है तो वह वातावरण के साथ समायोजन स्थापित कर लेता है और यदि वह अपने प्रयासों में असमर्थ या असफल रहा तो वह अवांछनीय मार्ग को अपना लेता है।

इस स्थिति में बालक कई बार घर–परिवार, विद्यालय या समाज में ऐसे कार्य या व्यवहार करता है जो परिवार, विद्यालय या समाज द्वारा उचित नहीं होते और न ही ऐसे कार्य स्वीकार होते हैं। इस कुसमायोजन की स्थिति में बालक अनुचित व्यवहार या जिसे कुसंक्रिया कहा जाता है, करते हैं।

ऐसे बालक किसी न किसी ऐसी समस्याओं से ग्रस्त रहते हैं कि उनके लिए कुछ विशिष्ट प्रकार की शैक्षिक, मनोवैज्ञानिक, भौतिक तथा सामाजिक व्यवस्थाओं की आवश्यकता होती है। वास्तव में इन बालकों की शैक्षिक, बौद्धिक, संवेगात्मक, भौतिक, सामाजिक अथवा व्यक्तिगत परिस्थितियाँ सामान्य बालकों से कुछ भिन्न होती हैं। अतः ये बालक विद्यालय व कक्षा में असामान्य व्यवहार यानि कुसंक्रिया करते हैं जैसे– पढ़ने से बचना, कक्षा या स्कूल की दीवारों पर लिखना, शिक्षकों पर फब्तियाँ कसना, अन्य विद्यार्थियों की वस्तुऐं चुराना, अक्रामक हो जाना, डेस्क पर खुरचकर लिखना, शिक्षक की नकल करना, प्रार्थना सभा में बातें करना, शिक्षकों से बहस करना, विद्यालय नियमों की अवहेलना करना, अनुशासनहीनता करना, शोर करना, अपशब्द कहना, विद्यालय देर से आना, गृहकार्य पूर्ण न करना, परीक्षा में नकल करना, छोटी कक्षा के विद्यार्थियों को परेशान करना, कक्षा से अनुपस्थित रहना इत्यादि जैसी अनेक कुसंक्रियाएं है जो अक्सर दिखायी देती हैं। पूरे देश में लाखों विद्यालय हैं, जहाँ ऐसा कुछ न कुछ रोज घटित होता रहता है। कोई भी विद्यालय ऐसा नहीं है जिनमें ऐसी कुसंक्रियाओं न होती हो। चाहे वह सरकारी विद्यालय हो या पब्लिक विद्यालय या निजी विद्यालय ही क्यों न हो। विद्यालय का स्तर कुछ भी हो प्राथमिक, माध्यमिक या उच्च माध्यमिक सभी में थोड़ी या बहुत कुसंक्रियाएं देखने को मिलती हैं।

अध्ययन का औचित्य

बालक के सर्वागीण विकास हेतु विद्यालयों की आवश्यकता होती है जहाँ पर बालक अनेक प्रकार की गतिविधियाँ करता है तथा समाज की आवश्यकता के अनुरूप व्यवहार करना सीखता है। साथ ही वह विद्यालय के नियमों का पालन तथा अनुशासन में रहना सीखता है। अक्सर देखने में आता है अधिकांश विद्यार्थी विद्यालय के नियमों तथा अनुशासन का पालन करना अपने व्यवहार में ले आते हैं वहीं कुछ विद्यार्थी ऐसे भी होते हैं जो विद्यालयी नियमों व अनुशासन का पालन नहीं करते हैं और अमान्य व्यवहार करते हैं। आज प्रत्येक प्रकार के विद्यालय चाहे वह सरकारी हो या निजी या फिर पब्लिक सभी विद्यालयों में विद्यार्थियो द्वारा ऐसे ही अनेक प्रकार कुसंक्रित व्यवहार या गतिविधियाँ की जाती हैं। विद्यालय के मानव संसाधन शिक्षक व प्राचार्य इन्हें संभालने में ही लगे रहते है और इनका सर्वाधिक समय इन असामान्य क्रियाओं को नियंत्रित करने में व्यतीत होता है।

आज विचार करने का प्रश्न यह है कि विद्यालयों में ऐसे कृत्य क्यों हो रहे हैं, जिसे हम और आप नहीं चाहते। क्या कारण है कि विद्यार्थी ऐसे कार्य करते जा रहे है। शून्य में तो कुछ भी नहीं होता, कहीं न कहीं कोई कारण तो अवश्य है जिसका प्रतिफल विद्यालयों में देखने को मिल रहा है, हो सकता है कि इसके पीछे समाज, परिवार, विद्यालय या इनमें से कोई विशेष घटक जिम्मेदार हो। आज आवश्यकता है कि इसके कारणों को खोजा जाए और उनको आधार मानकर समाधान के प्रयास किये जाएं ताकि छात्र – शिक्षक व विद्यालय अपने–अपने लक्ष्य को पा सकें। शोधार्थी ने अपने व्यक्तिगत अनुभवों से देखा है कि ज्यादातर विद्यालयों में विद्यार्थियों के द्वारा की जाने वाली कुसंक्रियाओं को अनदेखा कर दिया जाता है और इन कुसंक्रित व्यवहारों के कारणों को जानने और समझने का प्रयास नहीं किया जाता है।

शोध अध्ययन के उद्देश्य

प्रस्तुत शोध अध्ययन हेतु निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किये गये हैं–

1. उच्च प्राथमिक स्तर पर विद्यार्थियों द्वारा की जाने वाली कुसंक्रियाओं का निम्न के सन्दर्भ में अध्ययन करना

(अ) विद्यालय की प्रकृति
  (i) सरकारी
  (ii) गैर सरकारी
(ब) लिंग
  (i) छात्रों
  (ii) छात्राओं
(स) सामाजिक–आर्थिक स्तर
  (i) उच्च सामाजिक–आर्थिक स्तर
  (ii) निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर
(द) परिवेश
  (i) शहरी
  (ii) ग्रामीण

परिकल्पना

- उच्च प्राथमिक स्तर पर विद्यार्थियों में विभिन्न प्रकार की कुसंक्रियाएं पायी जाती हैं।
- उच्च प्राथमिक स्तर पर सरकारी व गैर–सरकारी विद्यालयों के विद्यार्थियों द्वारा की जाने वाली कुसंक्रियाओं में अन्तर नहीं पाया जाता है।
- उच्च प्राथमिक स्तर के छात्रों एवं छात्राओं द्वारा की जाने वाली कुसंक्रियाओं में अन्तर नहीं पाया जाता है।
- उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों की कुसंक्रियाओं पर उनके सामाजिक आर्थिक स्तर के आधार पर अन्तर नहीं पाया जाता है।
- उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों की कुसंक्रियाओं पर परिवेश के आधार पर अन्तर नहीं पाया जाता है।

प्रस्तुत शोध अध्ययन का न्यादर्श

N = 700

क्र.सं.	विद्यालय की प्रकृति	विद्यालय की संख्या	छात्र	छात्रा
1.	सरकारी (i) शहरी (ii) ग्रामीण	 5 5	 100 100	 100 100
2.	गैर सरकारी (i) शहरी (ii) ग्रामीण	 5 3	 100 50	 100 50

विधि

प्रस्तुत शोध अध्ययन के लिए शोधार्थी ने सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

उपकरण–प्रस्तुत शोध अध्ययन में शोधकर्त्री द्वारा निम्न उपकरणों का उपयोग तथ्य संकलन हेतु किया गया है–

अवलोकन सूची : कक्षा, खेल का मैदान, पुस्तकालय पुस्तक एवं कॉपी, प्रार्थना सभा, विद्यालय में अन्य विभिन्न स्थान

प्रत्यक्षीकरण मापनी : विद्यार्थी प्रत्यक्षीकरण मापनी

सांख्यिकी

प्रस्तुत शोधकार्य में शोधकर्त्री द्वारा टी–परीक्षण का प्रयोग किया गया है।

विश्लेषण एवं व्याख्या

(1) विद्यालयी प्रकृति के आधार पर

"उच्च प्राथमिक स्तर पर सरकारी व गैर सरकारी विद्यालयों के विद्यार्थियों द्वारा की जाने वाली कुसंक्रियाओं में अन्तर नहीं होता है।"

सारणी–1

विद्यालय	N	M	σ	t	Table Value	Level of Signficant	
सरकारी	400	116.65	27.99	3.44	1.96	.05	अस्वीकृत
गैर सरकारी	300	123.61	25.45		2.58	.01	

विश्लेषण एवं व्याख्या–सारणी सं. 1 के अवलोकन से स्पष्ट है कि उच्च प्राथमिक स्तर पर सरकारी व गैर–सरकारी विद्यालयों के विद्यार्थियों द्वारा की जाने वाली कुसंक्रियाओं में .05 स्तर पर 't' परीक्षण करने पर सार्थक अन्तर पाया गया। अतः शोध हेतु बनायी गयी परिकल्पना "उच्च प्राथमिक स्तर पर सरकारी व गैर सरकारी विद्यालयों के विद्यार्थियों द्वारा की जाने वाली कुसंक्रियाओं में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है" को निरस्त किया जाता है।

(2) लिंग भेद के आधार पर

"उच्च प्राथमिक स्तर छात्रों एवं छात्राओं की कुसंक्रियाओं में सार्थक अन्तर नहीं होता है।"

सारणी–2

विद्यार्थी	N	M	σ	t	Table Value	Level of Signficant	
छात्र	350	119.60	29.83	.02	1.96	.05	स्वीकृत
छात्रा	350	119.64	24.42		2.58	.01	

विश्लेषण एवं व्याख्या–उपरोक्त सारणी का अवलोकन करने से स्पष्ट होता है कि उच्च प्राथमिक स्तर के छात्र एवं छात्राओं का मध्यमान क्रमशः 119.60 तथा 119.64 है तथा इनसे प्राप्त प्रमाणिक विचलन के आधार पर 't' परीक्षण 02 प्राप्त हुआ 1 सार्थकता स्तर .05 'ज' मूल्य 1.96 है तथा 01 सार्थकता स्तर पर 't' मूल्य 2.58 है। 02 प्राप्त मूल्य 't' सार्थकता के अपेक्षित दोनों स्तरों से कम है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि उच्च प्राथमिक स्तर के छात्रों एवं छात्राओं की कुसंक्रियाओं में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।

(3) सामजिक आर्थिक स्तर के आधार पर

"उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों की कुसंक्रियाओं पर उनके समाजिक आर्थिक स्तर के आधार पर अन्तर नहीं होता है।"

सारणी–3

स्तर	N	M	σ	t	Table Value	Level of Signficant	
उच्च	367	122	27.19	2.47	1.96	.05	स्वीकृत
निम्न	333	117	27.10		2.58	.01	

विश्लेषण एवं व्याख्या–सारणी में प्रदर्शित प्रदत्तों के अवलोकन करने से स्पष्ट होता है कि विद्यार्थियों के सामाजिक आर्थिक स्तर से प्राप्त अंको के मध्यमान से प्राप्त 't' मूल्य 2.47 है। 0.05 स्तर पर इसका अपेक्षित मान 1.96 तथा 0.01 स्तर पर इसका अपेक्षित मान 2. 58 है। 2.47 प्राप्त 't' मूल्य 0.01 स्तर के मान से कम है तथा 0.05 स्तर के मान से अधिक है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों की कुसंक्रियाओं पर उनके सामाजिक–आर्थिक स्तर के आधार पर अन्तर नहीं पाया जाता है।

(4) परिवेश के आधार पर

"उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों की कुसंक्रियाओं में परिवेश के आधार पर सार्थक अन्तर नहीं होता है।"

सारणी–4

परिवेश	N	M	σ	t	Table Value	Level of Signficant	
शहरी	400	128.04	23.25	9.87	1.96	.05	अस्वीकृत
ग्रामीण	300	108.39	28.15		2.58	.01	

विश्लेषण एवं व्याख्या–उपरोक्त सारणी के अवलोकन करने से स्पष्ट होता है कि शहरी परिवेश के विद्यार्थियों का मध्यमान 128.04 व प्रमाणिक विचलन 23.25 है तथा ग्रामीण परिवेश के विद्यार्थियों का मध्यमान 108.39 व

प्रामाणिक विचलन 28.15 है। दोनों समूहों का 't' परीक्षण निकालने पर 'ज' परीक्षण का मान 9.87 प्राप्त हुआ है। 't' तालिका में .05 के स्तर पर 't' का मान 1.96 तथा 0.01 स्तर पर 't' का मान 2.58 है। 't' मान की तुलना करने पर दोनों ही स्तरों से 't' का मान (9.87) अधिक है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि परिवेश के आधार पर विद्यार्थियों की कुसंक्रियाओं में अन्तर होता है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त दत्त विश्लेषण के आधार पर निष्कर्ष निकाला जा सकता है–

1. उच्च प्राथमिक स्तर पर सरकारी व गैर–सरकारी विद्यालयों की तुलना में सरकारी विद्यालयों में कुसंक्रियाएं अधिक पायी गई अर्थात विद्यालय की प्रकृति विद्यार्थियों की कुसंक्रियाओं को प्रभावित करती है।
2. उच्च प्राथमिक स्तर के छात्रों एवं छात्राओं दोनों में ही कुसंक्रियाएं समस्तरीय रूप से पायी गई।
3. कुसंक्रियाएं दोनों ही सामाजिक आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों में समान रूप से पायी गई अर्थात समाजिक आर्थिक स्तर से कुसंक्रियाएं प्रभावित नहीं होती हैं।
4. परिवेश के आधार पर विद्यार्थियों की कुसंक्रियाओं में पाया गया अर्थात् विद्यार्थियों का परिवेश कुसंक्रियाओं को प्रभावित करता है।

शैक्षिक फलितार्थ

1. प्रधानाध्यापक हेतु

विद्यार्थियों की आवश्यकताओं एवं अपेक्षाओं को समझ कर तदानुसार उनके शैक्षिक उन्नयन हेतु गतिविधियों का आयोजन एवं पाठ्यक्रम को लागू कर सकेंगे। विद्यालय अनुशासन स्थापित करने में सुविधा प्राप्त हो सकेगी।

2. शिक्षक हेतु

उच्च प्राथमिक स्तर पर शिक्षक अधिगम को प्रभावी बनाने हेतु प्रयास कर सकेंगे। शिक्षक विद्यार्थियों की रूचियों . बुद्धि–लब्धि व योग्यता के आधार पर शिक्षण प्रक्रिया अपना कर प्रभावी शिक्षण कर सकेंगे। विद्यार्थियों को स्वअनुशासन हेतु प्रेरित कर सकेंगे। विद्यार्थियों को शैक्षिक व सहशैक्षिक गतिविधियों में भाग लेने हेतु प्रेरित कर सकेंगे।

3. अभिभावक हेतु

अभिभावकों के लिए यह अध्ययन इस रूप में महत्वपूर्ण होगा कि वे अपने बालकों में अच्छी आदतों का विकास कर सकेंगे। समय–समय पर विद्यालय में आयोजित होने वाली टीचर – पेरेन्ट मीटिंग में अध्यापकों से सम्पर्क के माध्यम से बालकों की समस्याओं को जानकर उनके समाधान में अपने स्तर पर प्रयास कर सकेंगे तथा बालक के सर्वांगीण विकास में सहयोग कर सकेंगे।

शोध अध्ययन की परिसीमायें

प्रस्तुत शोध कार्य में शोधकर्त्री ने अध्ययन को निम्नलिखित रूप में परिसीमित किया है–

1. प्रस्तुत शोध कार्य जयपुर जिले के उच्च प्राथमिक स्तर के सरकारी एवं गैर सरकारी विद्यालयों तक ही सीमित है।
2. प्रस्तुत शोध कार्य में सरकारी स्तर के 10 एवं गैर–सरकारी स्तर के 8 विद्यालय ही लिये गये है।
3. प्रस्तुत शोध कार्य में कुसंक्रिया के लिए चार आयामों को ही लिया गया है।
4. अध्ययन में प्रयुक्त उपकरण स्वनिर्मित लिये गये है।
5. अवलोकन प्रत्येक प्रकार के विद्यालय के विद्यार्थियों का समेकित रूप में किया गया है।

आगामी अध्ययन हेतु सुझाव

शैक्षिक अनुसंधान की यह विशेषता सदैव रहती है कि प्रत्येक शोधकार्य में किसी समस्या के एक अथवा कुछ अंशों का ही अध्ययन किया जाता है। अध्ययन सम्पन्न होने के साथ–साथ अनेक भावी रूपरेखाओं के आधार पर भावी अध्ययनों के लिए कतिपय सुझाव दिये जा सकते है जो निम्नलिखित है :–

- शोध अध्ययन का न्यादर्श विस्तृत किया जा सकता है, ताकि बेहतर निष्कर्ष प्राप्त हो सके।
- जयपुर जिले के माध्यमिक, उच्च माध्यमिक विद्यालयों या महाविद्यालयों के विद्यार्थी की कुसंक्रियाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है।
- राजस्थान के अन्य क्षेत्रों के विद्यालयों के विद्यार्थियों की कुसंक्रियाओं का अध्ययन किया जा सकता है।

- केन्द्रीय व राजकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों की कुसंक्रियाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है।
- कुसंक्रियाओं के आयामों का विस्तार कर अध्ययन किया जा सकता है।
- अंग्रेजी व हिन्दी माध्यम के विद्यार्थियों की कुसंक्रियाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है।
- कुसंक्रियाओं का विद्यार्थियों पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन किया जा सकता है।
- कुसंक्रियाओं एवं विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सम्बन्ध ज्ञात किया जा सकता।

संदर्भ ग्रंथ–सूची

1. बारन, राबर्ट ए. : साइक्लॉजी फिफ्थ एडीशन प्रेक्टिस हाल ऑफ इण्डिया. प्रा. लि., न्यू देहली, 2003
2. ब्राइमेन, एलन. : सोशल रिसर्च मैथड्स, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूर्याक, 2001
3. फ्रीमैम, फ्रेंक एस. : थियोरी एण्ड प्रेक्टिस ऑफ साइकोलॉजी टेस्टिंग थर्ड एडीशन ऑक्सफोर्ड एण्ड आई बी. एच. पब्लिशिंग, कोलकाता, 1965
4. गैरेट एच.ई. एण्ड वुडवर्थ, आर.एस. : स्टेटिस्टिक इन साइकोलॉजी एण्ड एजुकेशन, वाकिल्स जेफर एण्ड सिमसन लिमिटेड, बॉम्बे 1981
5. गिलफोर्ड, जे.पी. : फण्डामैण्टल स्टेटिस्टिक्स इन साइकोलॉजी एण्ड एजूकेशन, इन्टरनेशनल स्टूडेन्ट्स एडीशन मैक ग्राहिल बुक कम्पनी, न्यूयार्क 1990
6. गुप्ता ए.के. : एक्जामिनेशन रिफार्म, डायरेक्शन रिसर्च एण्ड एम्पलीकेशन, स्टार्लिंग पब्लिकेशन प्रा. लि., न्यू देहली
7. हरलॉक, ई.बी. : पर्सनेलिटी डवलपमेंट, टाटा मैक–ग्रू– हिल पब्लिशिंग कम्पनी, न्यू देहली, 2001
8. कुंडु सी.एल : इंडियन ईयर बुक ऑन टीचर एजूकेशन, ए. पी. एच. प्रकाशन, न्यू देहली, 1988

ग्रामीण परिवेश में बच्चों में बाल्यावस्था में आहार एवं पोषण सम्बन्धी जागरूकता का अध्ययन

डॉ. जुग्नू कुमार*

सार–संक्षेप

6–12 वर्ष की उम्र बाल्यावस्था कहलाती है। विकास की दृष्टि से इस अवस्था का बड़ा ही महत्व है। यह अवस्था किशोरावस्थां से पहले आती है। वस्तुतः इस अवस्था में किशोरावस्था की वृद्धि के लिए पूर्व तैयारी होती है। जैसे कि यह पूर्व ज्ञात है। कि किशोरावस्था तीव्र वृद्धि की अवधि है। अतः यह महत्वपुर्ण है कि इसकी मजबूत बुनियाद स्कूल काल में रख दी जाए। इसके लिए स्कूलगामी या उत्तर बाल्यावस्थ के बच्चों निर्णाणक कारक है। विकास की वृद्धि से बाल्यावस्था के सामान्य विकास व अनुकुल वृद्धि के लिए संतुलित आहार निर्णायक कारक है विकास की वृद्धि से बाल्यावस्था का बड़ा ही महत्व है इस उम्र तक बालकों की औपचारिक शिक्षा शुरू हो जाती है बालक विभिन्न शारीरिक क्रियात्मक क्रियाएँ भी सिख चुका होता है। बाल्यावस्था में बालक की शारीरिक मानसिक विकास की गति प्रायः बहुत तीव्र होती है तथा शारीरिक अंग भी शनैः शनैः पुर्णता एवं परिपक्वता प्राप्त कर लेते है परिणामस्वरूप उसके कार्यो एवं व्यवहारों में परिवर्तन आने लगता है जिसका प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष प्रभाव बालक के भोजन पर पड़ता है।

परिचय

बच्चों के देखभाल, पोषण स्वास्थ तथा शिक्षा को बढ़ावा देने में महिलाएँ की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। साथ परिवार तथा समाज के सामाजिक–आर्थिक विकास में भी महिलाएँ अहम भूमिका निभाती है। बालक एवं बालिकाओं के समग्र विकस में 6–12 वार्ष की अवस्था एक महत्वपूर्ण अवस्था है जो कि उनके वृद्धि एवं विकास को प्रभावित करती है। अतः यह माना लिया जाता है कि यदि 6–12 वर्ष की बालक–बालिकाएँ स्वस्थ तथा पोषणत्मक कमियों से मुक्त होगा तो वे भविष्य में राष्ट्र के विकास में अहम भूमिका निभा सकती है। साथ ही साथ परिवार तथा समाज का भी बेहतर विकास में अहम भूमिका निभा पोषण में राष्ट्र के विकास तथा कल्याण कर पाएगा। इस तरह देश और समाज दोनों ही पिछड़ा और अविकासित होगा। अतः यह भी महत्वपूर्ण है की बालक–बालिकाओं स्वस्था, विकसित तथा पोषणत्मक कमियों से मुक्त हों ताकि हमारा परिवार समाज, तथा राष्ट्र विकास की धारा से जुड़ सके ताकि पुरें समाज का सर्वागीण विकास हो सके ताकि किशोरियाँ राष्ट्र के सर्वगीण विकास में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सके। साथ ही साथ जीवन–चक्र की अन्य अवस्थाओं के तुलना में 6–12 वर्ष में काफी कम शोध हुए हैं। बाल्यवस्था, गर्भवती अवस्था, धात्री अवस्था आदि के लाभर्थियों के लिए कई सरकारी कल्याणकारी कार्यक्रम चलाए जा रहे है, जबकि सरकार के द्वारा 6–12 वर्ष के बालक–बालकाओं के लिए बहुत कम, नही के बाराबर कल्याणकारी कार्यक्रम चलाए जा रहे है। अतः इस क्षेत्र में शोध की अत्यधिक आवश्यकता है।

किशोरावस्था तक पहुँचते–पहुँचते बालक शारीरिक वृद्धि मानसिक विकास तथा सवेगात्मक विशेषताओं तथा अभिरूचियों से भी प्रभावित होने लगता है। बालक अक्सर तनाव ग्रस्त रहने लगता है। उसे तनाव से मुक्ति पाने तथा परिवार के सदस्यों एवं अपने साथियों के साथ समायोजन स्थापित करने में उसकी बहुत सी उर्जा खर्च हो जाती है। इस कारण बाल्यावस्था में अधिक पौष्टिक भोज्य पदार्थो की जरूरत होती है। यदि इस उम्र में बालको को पूर्ण पोष्टिक आहर नही दिया जाए तो उसके शारीरिक, मानसिक, शैक्षिक, खेल एवं संवेगात्मक विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अतः इस उम्र के बालकों को उचित एवं पौष्टिक भोजन पर माताओं को अधिक ध्यान देना चाहिए।

बाल्यावस्था या उत्तर बाल्यावस्था में बालकों की क्रियाशीलता बढ़ जाती है। साथ ही आत्मनिर्भरता भी बढ़ जाती है। वे अपना हर कार्य स्वयं ही शीघ्रता से निपटाना चाहते है, तथा वे नहीं चाहते है कि उसमें दूसरों का हस्तक्षेप हो। वे विभिन्न क्रियाएँ जैसे– भोजन करना, वस्त्र पहनना, स्नान करना, अपने वस्तुओं को

* सहायक प्राध्यापक, (शिक्षा संकाय), जे0पी0 शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, मथुरापुरघाट समस्तीपुर (बिहार) पिन कोड–848102

यथास्थान रखना आदि कार्य स्वथ्यं ही करने लगते है। विद्यालयी बालक स्वयं के प्रति अत्यन्त ही लापरवाह होते है। विशेषकर भोजन पर तो बिल्कुल ही समय व्यतीत नहीं करना चाहते हैं नाश्ते को छोड़ ही देते है। खेलने में बालक इतने अधिक व्यस्त हो जाते है कि वे विद्यालय में अपना लंच बॉक्स तक नही खोल पाते है।

आज के बच्चों के समक्ष अनेक चुनौतियाँ है, कई तरह के दबाब भी है। जिससे वे अक्सर कुण्ठित होकर अनेक असमान्य व्यवहार करते हैं बच्चे के सम्पूर्ण विकास में परिवार और समाज का पूर्ण उत्तरदायित्व होता है। बालक किसी भी राष्ट्र की नींव होते है। आधुनिक समाज में बालक एवं किशोर का स्थान महत्वपूर्ण है, क्योंकि किसी भी देश की जनसंख्या का एक बड़ा भाग अवस्था में बालकों एवं किशोर द्वारा निर्मित होता है। बाल्यकाल मानव जीवन की अपरिपक्वता का अवस्था होती है, इस अवस्था में बालक की स्थिति कुम्हार के उस कच्चे घड़े के समान होती है, जिसे वह कुशल हाथों, से संवार कर कलात्मक एवं आकर्षक रूप दे सकता है या फिर अपने फूहड़ हाथों से भरी आकृति में भी परिवर्तित कर सकता है। शिशु किसी आदत को लेकर जन्म नहीं लेता। वह तो अपनी मूल आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु तथा इस जटिल एवं नवीन अवतारण से सामंजस्य स्थापित करने के लिए कुछ क्रियाएं करता है, यही प्रारम्भिक क्रियाएँ उत्तरोत्तर उनके विकास का आधार बनती जाती है। एडलर का मानना है कि, ''व्यक्ति के संपूर्ण जीवन के मूल ढ़ांचे का निर्माण शैशवास्था में ही जाता हैं। हरलाक के अनुसार ''शिशु का मस्तिष्क एक स्लेट के समान होता हैं, आप जो चाहें इस पर लिख सकते है।'' यह स्पस्ट हो जाता है कि किशोरावस्था ही जीवन की धुरी हैं तथा यह सम्पुर्ण जीवन काल की सबसे संवेदनशील अवस्था है।

बच्चे आदर्शो और नैतिक मूल्यों के द्वारा उचित व्यवहार करते है या नहीं ? संपूर्ण विकास हेतु अनुकारण, पुरस्कार दंड, प्रेरणा आदि का व्यक्तित्व विकास में योगदान है, जो मानव विकास से सम्बद्ध है। मानव विकास के अन्तर्गत मानव जीवन की सम्पूर्ण अवधि का अध्ययन किया जाता इसमें मानव का अध्ययन गर्भाधान से मृत्यु तक किया जाता है। सम्पूर्ण जीवन अवधि की विभिन्न अवस्थाओं में वृद्धि विकास एवं क्षय होने की समस्त प्रक्रियाओं का अध्ययन मानव विकास की अध्ययन मानव विकास वस्तु है।

हमारी संस्कृति महत्पूर्ण, अर्थपूर्ण तथा अध्ययन करने योग्य है। समाज की उन्नती और व्यवहार के विकास का ज्ञान, युवा एवं बच्चे को प्रथमतः समाज द्वारा निर्धारित लक्ष्य एवं उद्देश्य तक पहुँचने में सहायता प्रदान करते है। बालक लघुव्यस्क होता है। तथा बच्चों के लिए नैतिक जिम्मेदारियाँ पहले से निधारित कर दी जाती है। और इस प्रकार उसे अनुभव एवं परिपक्वता द्वारा सीखकर अपने परम्परगत मानक स्थापित करने के अवसर नहीं मिल पाते है। बालक की दुनिया समझ लेने से हम व्यस्क की दुनिया को अधिक स्पष्ट रूप से जान या समझ सकते है।

मानव विकास का अध्ययन व्यवहार की व्याख्या पर केन्द्रित हैं इस क्रम में यह आयु के नियमों एवं सिद्धान्तो को अनुसंधान करता है। मानव विकास आयु के अनुसार व्यक्ति के व्यवहार की खोज एवं व्याख्या करता है। मानव विकास का क्षेत्र वैज्ञानिक शोधों की वह शाखा है जो मानव का गर्भाधान से मृत्यु तक वैज्ञानिक अध्ययन करता है। गर्भवस्था से मृत्यू संपूर्ण, जीवन अवधि में होने वाले विकास तथा व्यवहार के यह परिवर्तन मात्रात्मक, शारीरिक वृद्धि विकास एवं गुणात्मक अमूर्त विचारधारा में समाहित होते हैं।

संस्कृति का व्यक्ति के शारीरिक तथा मानसिक विकास पर गहरा प्रभाव पड़ता है। संस्कृति समाज का दर्पण होती है। व्यक्ति के विकास में संस्कृति का महत्वपूर्ण योगदान है। संस्कृति के अनुरूप ही व्यक्ति का विकास होता है। व्यक्ति के विकास में संस्कृति का महत्वपूर्ण योगदान है। संस्कृति के अनुरूप ही व्यक्ति का विकास होता है। कई समाजों में उनकी संस्कृति के अनुसार कुछ ऐसी रूढ़ियाँ, प्रथाओं तथा रीतिरिवाज पाए है, जो बालक की मूल प्रवृत्तियों इच्छाओं तथा रूचियों को दमन करते है। मीड लिटम तथा रूथ बेनिडिक्ट आदि मानव शास्त्रियों ने बालक के विकास पर संस्कृति के प्रभाव का अध्ययन किया एवं इस निष्कर्ष पर पहुँवचे कि भिन्न संस्कृतियों में पले हुए बच्चों का शरीरिक व मानसिक विकास भी भिन्न होता है।

किशोरावस्था अत्यन जिज्ञासु अवस्था होती है। इस अवस्था के बच्चे हर स्थिति की वास्तविकता जानन चाहते है। हर स्थिाति में निपुण होकर वे सामाजिक दृष्टि से लोकप्रिय बनना चाहते है। समाज की दृष्टि में नीचा देखने संबंधी वे किसी प्रकार का हीन कार्य नहीं करना चहते। इस अवस्था में बालक की यह सामाजिक स्वीकृति की लालसा इतनी बढ़ जाती है कि वह स्वयं से ज्यादा समाज को महत्व देने लगता है। आज के इस भौतिकतावादी प्रतिस्पर्धा के युग में सामाजिक व्यवस्था में निरंतर नवीन परिवर्तन एवं पारस्परिक संबंधां के प्रति विचारों में परिवर्तन आ रहा है। परिवार एवं समाज की बालक/बालिकाओं से अपेक्षायें बढ़ती जा रही है। स्थिति यह है कि बालक जब इन अपेक्षाओं को पूर्ण करने में स्वयं को असमर्थ

पाता है तो उसमें चिड़चिड़ापन अपेक्षा घृणा एवं व्यक्तित्व विघटन जैसी मानसिक विकृतियाँ उत्पन्न हाने लगती है, फलस्वरूप बालक संवेगात्मक रूप से परिपक्त नहीं हो पाता और इस स्थिति से उत्पन्न परिणाम बालक हो समाज से समायोजित होने अवरोध उत्पन्न करते है।

सामाजीकरण के लिए बालक को पर्याप्त अवसर मिलना नितांत आवश्यक है। उसकी परिपक्वता उसका सामाजिक समायोजन करने में सहयोगी होगी। किशोरावस्था में दूसरों के संवेगों को समझने और आत्मसात करने की क्षमता करने की क्षमता आ जाती है। बालक जीवन में प्रसन्नता और सुख की अनुभूति करता है। यह आयु हंसने, मुस्कराने तथा दूसरों के साथ प्रेम करने की समर्थता उत्पन्न करती है। परिस्थिति के अनुरूप बालक अपने संवेगों की अभिव्यक्ति करना सीख जाता हैं। प्रस्तुत शोध अध्यय का महत्व इस तथ्य में निहित है कि किशोरावस्था के संवेगों और समाजिक समायोजन की समता का अध्ययन कर, बालकों को उचि निर्देशन एवं मार्ग दर्शन प्रदान किया जा सकें। बालक अपने संवेगों की परिपक्वता के सथा कुल सामाजिक समायोजन कर सफल जीवन व्यतीत करता है, जो निश्चित इस अध्ययन की सार्थकता सिद्ध हो सकेगी।

अन्वेषण में आने वाले सभी घटकों को स्पष्ट रूप से परिभाषित करना अत्यंत होता है। एलमर महोदय का कथन है कि, जहाँ तक संभव हेा इकाई को समस्त विरोधी या परिवर्तनीय तत्वों से स्वतंत्र रखना चाहिए। अतः अध्ययन के अन्तर्गत प्रयुक्त समस्त प्रत्ययों का स्पष्टीकरण आवश्यक है। शोधकर्ता अथवा, अन्य संबंधित व्यक्ति अध्ययन के किसी चरण में किसी भ्रन्त धारणा से ग्रसित न हो पायें इस उद्देश्य से शोध में प्रयुक्त कुछ शब्दों को निम्न रूप से परिभाषित किया गया है।

विकास का तात्पर्य गर्भावस्था से लेकर मुत्यु तक किसी निश्चित लक्ष्य की ओर होने वाले उन निरन्तर परिवर्तनों से है जो वयवस्थित तथा समानुगत' और प्रगतिशील क्रम रूप से होते है। हरलॉक के अनुसार विकास बढ़ने तक ही सीमित नही है। वयवस्थित तथा समानुगत प्रगतिशील क्रम है जो परिपक्वता की प्राप्ति में सहायक होता है। ड्रेवर, विकास प्राणी में प्रगतिशील परिवर्तन है जो किसी निशिचत लक्ष्य की ओर लगातार निर्देशित होता है। इंगलिश और इंगलिश विकास प्राणी की शरीर अवस्था में एक लम्बे अर्से तक होने वाले लगातार परिवर्तन का एक क्रम है। यह विशेषतः ऐसा परिवर्तन है जिसके कारण जन्म से लेकर परिपक्वता और मृत्यु तक प्राणी में स्थायी परिवर्तन होते है।

निष्कर्ष

भारत में किए गए आहार एवं पोषण सर्वेक्षणें से यह निष्कर्ष निकलता है कि अधिकांश विद्यालयी बच्चे तथा किशोर अपर्याप्त भोजन ग्रहण करते हे जिसके कारण उनका शारीरिक मानसिक एवं बौद्धिक विकास प्रभावित होता है। परिणामत एवं अंधविश्वास अपर्याप्त खाद्य पदार्थो का उत्पादन भोज्य पदार्थो का असमान वितरण, संक्रमण, पोषण संबंधी शिक्षा का अभाव आदि कुपोषण के कारण हैं।

संदर्भ :

1. बी.चौधरी, आहार एवं पोषण विज्ञान, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा, 1995, पृष्ठ संख्या 85,
2. मथुरेश्वर पारीक 'बाल विकास एवं पारिवारिक सम्बन्ध' विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 2009, पृष्ठ संख्या 104,
3. उषा मिश्रा (1994) आहार एवं पोषण विज्ञाण, साहित्य प्रकाशन, आगरा पृष्ठ संख्या 359,
4. डॉ. अनीता सिंह (2008) आहार एवं पोषण विज्ञान, स्टार पब्लिकेशन, आगरा, पृष्ठ संख्या 112
5. बी.डी. हरपालानी (1994) आहार विज्ञान एवं उपचारत्मक पोषण, स्टार आगरा, पृष्ठ संख्या 289
6. भगवान, दास, बाल विकास, ओमेगा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012, पृष्ठ संख्या 59. .
7. प्रोफेसर अर्चना सिंह, व्यवहारिक आहार विज्ञान एवं आहार चिकित्सा, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा –2, 2007, पृष्ठ संख्या 47.

ग्रामीण भारत में शिक्षा में सुधार समाधान और चुनौतियाँ

डॉ. शम्भु कुमार शर्मा*

परिचय

भारत ने हाल के वर्षों में शिक्षा तक पहुँच में सुधार लाने में प्रभावशाली प्रगति की है, लेकिन अभी भी एक लंबा रास्ता तय करना है, खासकर ग्रामीण क्षेत्रों में। ग्रामीण क्षेत्रों के कई स्कूल में बुनियादी सुविधाओं जैसे कक्षाओं, फर्नीचर और स्वच्छ पेयजल का अभाव है, जिससे छात्रों के लिए प्रभावी ढंग से सीखना मुश्किल हो जाता है। इसके अलावा, ग्रामीण क्षेत्रों में योग्य शिक्षकों की कमी है, विशेष रूप से विज्ञान और गणित में; यह निम्न–गुणवत्ता वाले शिक्षण और उच्च ड्रॉपआउट दरों का कारण बनता है। कुछ ग्रामीण क्षेत्रों में, छात्र शिक्षण की भाषासे अलग भाषा बोलते हैं जिससे छात्रों के लिए सामग्री को समझना और कक्षा में भाग लेना मुश्किल हो सकता है। ग्रामीण क्षेत्रों में कई परिवार अपने बच्चों को स्कूल भेजने का जोखिम नहीं उठा सकते हैं, खासकर यदि स्कूल दूर हैं, जिससे उच्च ड्रॉपआउट दरें हो सकती हैं। इसके अलावा, अक्सर ग्रामीण क्षेत्रों में लड़कियों के साथ शिक्षा में भेदभाव किया जाता है सरकार को बहुभाषी देश में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने की चुनौती का भी सामना करना पड़ता है, क्योंकि भारत में 100 से अधिक भाषाएं बोली जाती हैं, और इनमें से कई भाषाएं अपने–अपने क्षेत्रों के बाहर व्यापक रूप से नहीं बोली जाती हैं, जिससे सभी छात्रों के लिए प्रासंगिक पाठ्यपुस्तकें हो जाता है।

ग्रामीण भारत में शिक्षा –सुधार –समाधान –चुनौती

संक्षेप में, ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा के समक्ष निम्नलिखित चुनौतियाँ हैः–

स्कूलों में स्वच्छ पानी, शौचालय, बिजली और पर्याप्त कक्षाओं जैसी बुनियादी सुविधाओं का अभाव है, जिससे छात्रों के लिए अपनी पढ़ाई पर ध्यान केंद्रित करना मुश्किल हो जाता है

- **योग्य शिक्षकों की कमी : ग्रामीण :** ग्रामीण क्षेत्रों में अक्सर शिक्षकों की कमी का सामना करना पड़ता है, और कई शिक्षक ग्रामीण स्कूलों में पढ़ाने के लिए पर्याप्त रूप से प्रशिक्षित नहीं होते हैं। शिक्षकों की कमी से ज़्यादा, शिक्षकों की तैनाती चिंता का एक और बड़ा विषय है। इसके अलावा, संविदा शिक्षकों की नियुक्ति और नियमित शिक्षकों की भर्ती बंद होना भी चिंता का विषय है।
- **अप्रशिक्षित शिक्षक :** राज्यों, विशेषकर देश के पूर्वोत्तर क्षेत्र के कुछ राज्यों में अप्रशिक्षित शिक्षण कर्मचारियों का प्रतिशत बहुत अधिक है।
- **भाषा की बाधा :** कई ग्रामीण इलाकों में, छात्र अपनी स्थानीय बोली बोलती हैं, जो पढ़ाई की भाषा से अलग होती है। यह भाषाई बाधा छात्रों के लिए सीखना और समझना मुश्किल बना सकती है।
- **गरीबी :** ग्रामीण क्षेत्रों में कई पृष्ठभूमि से आते हैं, और उनके परिवार शिक्षा की लागत, जैसे कि यूनिफॉर्म, पाठ्यपुस्तकें और परिवहन का खर्च वहन नहीं कर सकते हैं, जो शहरी क्षेत्रों के छात्रों के लिए भी सच हो सकता है।
- **डिजिटल बुनियादी ढांचे का अभाव :** ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के सभी स्कूलों में इंटरनेट की सुविधा नहीं है, जिससे छात्रों के लिए ऑनलाइन शिक्षण संसाधनों तक पहुँचना और हालिया महामारी के दौरान दुनिया के बाकी हिस्सों के साथ बने रहना मुश्किल हो रहा है। घरों में उपकरणों और इंटरनेट के लिए भी यही सच है।

सरकार अपने सभी नागरिकों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने के लिए प्रतिबद्ध है, चाहे वे कहीं भी रहते हों; इस वजह से, इसने शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार के लिए विभिन्न कदम उठाए हैं, खासकर ग्रामीण क्षेत्रों में, लेकिन शिक्षा में समाधान के लिए चुनौतियों का सामना करने के लिए अभिनव समाधान विकसित करने की आवश्यकता है, जो ग्रामीण क्षेत्रों में प्राप्त किए बिना प्राप्त नहीं किया जा सकता है।

* सहायक प्राध्यापक (शिक्षा संकाय), संतपौल शिक्षण प्रशिक्षण महाविद्यालय, वीरसिंहपुर, जिला समस्तीपुर, बिहार

हालिया पहल

- **सर्व/समग्र शिक्षा अभियान** का उद्देश्य भारत के सभी बच्चों को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करना है। सर्व शिक्षा अभियान ने ग्रामीण क्षेत्रों में नामांकन दर बढ़ाने में मदद की है, लेकिन गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने में इसे चुनौतियों का भी सामना करना पड़ा है।
- **मध्याह भोजन योजना** सरकारी स्कूलों में छात्रों को निःशुल्क भोजन उपलब्ध कराती है, जिससे स्कूल में उपस्थिति बढ़ाने में मदद मिली है, विशेषकर लड़कियों के बीच।
- **राष्ट्रीय साक्षरता मिशन** का उद्देश्य भारत में निरक्षरता को समाप्त करना है, तथा ग्रामीण क्षेत्रों पर अधिक ध्यान केंद्रित किया जा रहा है, जिसके कारण निरक्षरता दर में कमी लाने में कुछ प्रगति हुई है।

उपरोक्त प्रयासों के बावजूद, भारत अभी भी ग्रामीण क्षेत्रों में छात्रों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने में गंभीर चुनौतियों का सामना कर रहा है। अपर्याप्त बुनियादी ढाँचे, योग्य शिक्षकों की कमी, भाषा संबंधी बाधाओं, गरीबी और लैंगिक भेदभाव जैसी चुनौतियों से निपटने के लिए और अधिक प्रयास किए जाने की आवश्यकता है, जिनका विवरण नीचे दिया गया है।

- **बुनियादी ढांचे में सुधार :** सरकार को ग्रामीण क्षेत्रों में स्कूलों के बुनियादी ढांचे में सुधार पर ध्यान केंद्रित करने की आवश्यकता है, जिसमें नए कक्षाओं का निर्माण, स्वच्छ पानी और बिजली उपलब्ध कराना, तथा लड़कियों और लड़कों के लिए अलग–अलग शौचालयों का निर्माण शामिल है।
- **योग्य शिक्षकों को आकर्षित करना और उन्हें बनाए रखना :** सरकार को उच्च वेतन और बेहतर कौशल में सुधार के लिए नियमित प्रशिक्षण और व्यावसायिक विकास के अवसर भी प्रदान करने चाहिए।
- **स्थानीय भाषाओं में शिक्षा प्रदान करना :** सरकार को भाषा संबंधी बाधा को दूर करने के लिए स्थानीय भाषाओं में शिक्षा को बढ़ाव देना चाहिए।
- **छात्रों को वित्तीय सहायता :** सरकार को गरीब पृष्ठभूमि के छात्रों को शिक्षा की लागत, जैसे कि यूनिफॉर्म, पाठ्यपुस्तकें और परिवहन, को कवर करने के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करनी चाहिए।
- **डिजिटल अवसंरचना :** सरकार को ग्रामीण क्षेत्रों के स्कूलों में डिजिटल अवसंरचना उपलब्ध कराने पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए, जिसमें इंटरनेट, कंप्यूटर और अन्य डिजिटल िक्षण संसाधनों तक पहुंच शामिल हो।

ग्रामीण क्षेत्रों में छात्रों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने में भारत सरकार के सामने आने वाली चुनौतियाँ गंभीर हैं। हालाँकि, सरकार, निजी संगठनों और नागरिक समाज के संयुक्त प्रयासों से इन चुनौतियों का समाधान किया जा सकता है। इन चुनौतियों का समाधान करके, हम यह सुनिश्चित कर सकते हैं कि भारत के सभी छात्रों को, चाहे उनका स्थान या सामाजिक–आर्थिक पृष्ठभूमि कुछ भी हो, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्राप्त हो।

तथ्य और आंकड़े

नीचे प्रस्तुत प्रथम के एएसईआर के आधार पर, भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा के बारे में राज्य–विशिष्ट आँकड़े बताते हैं कि ग्रामीण क्षेत्रों में स्कूलों का प्रतिषत राज्यों के बीच व्यापक रूप से भिन्न है, गोवा में 27.8 प्रतिशत से लेकर अरुणाचल प्रदेश में 96.9 प्रतिशत तक। यह उच्च प्रतिशत दर्शाता है कि कुछ राज्य ग्रामीण शिक्षा में अन्य की तुलना में अधिक निवेश करते हैं।

ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा : अखिल भारतीय

जीईआर का तात्पर्य सकल नामांकन अनुपात से है, जो किसी वर्ष में शिक्षा के किसी विशेष स्तर पर नामांकित कुल छात्रों की संख्या और जनसंख्या के संबंधित आयु वर्ग का अनुपात है।

दूसरी ओर, प्राथमिक शिक्षा के लिए जीईआर 12 राज्यों में राष्ट्रीय औसत 103.8 प्रतिशत से अधिक है, जिसमें गोवा में जीईआर सबसे अधिक 99.6 प्रतिशत है। राष्ट्रीय और प्राथमिक विद्यालय में नामांकित हैं। इसकी तुलना में उच्च प्राथमिक शिक्षा के लिए जीईआर 13 राज्यों में राष्ट्रीय औसत 69.4 प्रतिशत से कम है, झारखंड में सबसे कम जीईआर 58.8 प्रतिशत है, जो बताता है कि कुछ बच्चे उच्च प्राथमिक स्तर तक पहुँचने से पहले ही स्कूल छोड़ देते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में साक्षरता दर 11 राज्यों में राष्ट्रीय औसत 63.4 प्रतिशत से अधिक है, जिसमें केरल की साक्षरता दर सबसे अधिक 96.2 प्रतिशत है; इससे पता चलता है कि कुछ राज्यों ने ग्रामीण क्षेत्रों में साक्षरता दर में सुधार करने में महत्वपूर्ण प्रगति की है।

ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा, राज्य–विशिष्ट

राज्य / केंद्र	ग्रामीण क्षेत्रों में	प्राथमिक शिक्षा में	उच्च प्राथमिक	साक्षरता दर
आंध्र प्रदेश	62.3	103.8	69.4	63.4
अरुणाचल प्रदेश	96.9	120.7	84.7	56.5
असम	93.9	102.3	56.2	66.3
बिहार	83.0	98.4	57.5	61.8
झारखंड	87.5	99.4	58.8	57.6
कर्नाटक	65.5	99.1	70.8	61.3

- **आंध्र प्रदेश :** आंध्र प्रदेश में 62.3 प्रतिशत स्कूल प्राथमिक विद्यालयों में अधिक बच्चे नामांकित हैं। उच्च प्राथमिक शिक्षा के लिए साक्षरता दर (जीईआर) 69.4 प्रतिशत है, जो प्राथमिक शिक्षा से कम है। ग्रामीण क्षेत्रों में साक्षरता दर 63.4 प्रतिशत है।
- **अरुणाचल प्रदेश :** अरुणाचल प्रदेश में 96.9 प्रतिशत स्कूल ग्रामीण क्षेत्रों में हैं। प्राथमिक शिक्षा के लिए साक्षरता दर 12.7 प्रतिशत है, जो देश में सबसे ज़्यादा है। उच्च प्राथमिक शिक्षा के लिए साक्षरता दर 84.7 प्रतिशत है, जो राष्ट्रीय औसत से भी ज़्यादा है। ग्रामीण क्षेत्रों में साक्षरता दर 56.5 प्रतिशत है।
- **असम :** असम में 93.9 प्रतिशत स्कूल ग्रामीण क्षेत्रों में हैं। प्राथमिक शिक्षा के लिए साक्षरता दर 120.3 प्रतिशत है, जो राष्ट्रीय औसत से अधिक है। उच्च प्राथमिक शिक्षा के लिए साक्षरता दर 56.2 प्रतिशत है, जो राष्ट्रीय औसत से अधिक है। उच्च प्राथमिक शिक्षा के लिए साक्षरता दर 56.2 प्रतिशत है, जो राष्ट्रीय औसत से कम है। ग्रामीण क्षेत्रों में साक्षरता दर 66.3 प्रतिशत है।
- **बिहार :** ग्रामीण स्कूलों के उच्च प्रतिशत के साथ, बिहार ने ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा की पहुँच में सुधार लाने में उल्लेखनीय प्रगति की है, जैसा कि प्राथमिक भी अपेक्षाकृत कम है, जो शिक्षा की गुंणवत्ता में सुधार की आवश्यकता को रेखांकित करती है।
- **झारखंड :** झारखंड में 87.5 प्रतिशत स्कूल ग्रामीण क्षेत्रों में हैं। प्राथमिक शिक्षा के लिए साक्षरता दर 99.4 प्रतिशत है, जो राष्ट्रीय औसत से अधिक है। उच्च प्राथमिक शिक्षा के लिए साक्षरता दर 58.8 प्रतिशत है, जो राष्ट्रीय औसत से कम है। ग्रामीण क्षेत्रों में साक्षरता दर 57.6 प्रतिशत है।
- **कर्नाटक :** कर्नाटक में ग्रामीण स्कूलों का प्रतिशत अधिक है और प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक शिक्षा के सकल नामांकन अनुपात में इसका प्रदर्शन अच्छा है। हालाँकि, इसकी ग्रामीण साक्षरता दर राष्ट्रीय औसत से कम है, जो दर्शाता है कि राज्य को शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार पर ध्यान केंद्रित करने की आवश्यकता है।

निष्कर्ष

इस प्रकार हम निष्कर्ष स्वरूप कह सकते है कि कुल मिलाकर, जबकि कई राज्यों में ग्रामीण क्षेत्रों में स्कूलों का प्रतिशत और सकल नामांकन अनुपात में सुधार हुआ है, अधिकांश राज्यों में ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार पर ध्यान केंद्रित करने की आवश्यकता पर बल दियाा गया है, जिसमें शिक्षक प्रशिक्षण और सहायता को बढ़ाना, बेहतर बुनियादी ढाँचा और संसाधन प्रदान करना, और अधिक प्रभावी शिक्षण और अधिगम रणनीतियों को बढ़ावा देना शामिल है। उपरोक्त विश्लेषण का उपयोग ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा की स्थिति में सुधार के लिए नीतिगत निर्णयों और हस्तक्षेपों को सूचित करने के लिए किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, इस डेटा का उपयोग ग्रामीण शिक्षा में अधिक निवेश की आवश्यकता वाले राज्यों की पहचान करने या उच्च प्राथमिक स्तर तक पहुँचने से पहले बच्चों को स्कूल छोड़ने में मदद करने के लिए हस्तक्षेपों को लक्षित करने के लिए किया जा सकता है।

संदर्भ

- एनआईईपीए, नई दिल्ली (एमएईडी) द्वारा कला में स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम 2025 शुरू किया गया ।
- भारतीय उच्च शिक्षा आयोग (एचईसीआई) विधेयकः भारतीय उच्च शिक्षा के लिए एक परिवर्तनकारी कदम ।
- 2035 में भारतीय स्कूल कक्षाओं की कल्पनाः एआई और स्मार्ट प्रौद्योगिकियों की परिवर्तनकारी भूमिका।
- आरटीई अधिकनियम, 2009 के तहत मुफ्त शिक्षा कार्यान्वयन समिति।
- इंटरनेट की लत पर एनसीईआरटी मॉड्यूल (2025)।

चेरो जनजाति का सामाजिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन

अंजली कुमारी*

भारतीय समाज में विभिन्न जजनातियाँ पायी जाती है, जिनकी संस्कृति एवं समाज अनोखी तथा विशिष्ट है। ये जनजातियाँ जंगलों को अपना वास स्थान मानती हैं तथा इनकी संस्कृति जंगलों पर ही आधारित भी है। संविधान के अनुच्छेद 342 के तहत अधिसूचित जनजातियों की सूचि में 730 से अधिक जनजातियाँ शामिल हैं। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में आदिवासियों का प्रतिशत भारत की जनसंख्या का 8.6 प्रतिशत है।[1] ये जनजातियाँ देश के लगभग सभी राज्यों एवं केन्द्रशासित प्रदेशों में निवास करते हैं, किन्तु कुछ राज्यों जैसे– मध्यप्रदेश, उड़ीसा, राजस्थान, छत्तीसगढ, झारखण्ड, असम इत्यादि राज्यों में इनकी संख्या अधिक है।

गौरतलब है कि यदि झारखण्ड की बात की जाय तो यहाँ 32 जनजातियाँ निवास करती है, जैसे– मुण्डा, उराँव, हो, संथाल इत्यादि। इन्हीं 32 जनजातियों में से एक चेरो जनजाति का भी नाम उल्लेखनीय है। चेरो जनजाति भारत के बिहार, झारखण्ड, उत्तरप्रदेश, पश्चिम बंगाल, उड़ीसा राज्यों में पाए जाते हैं। ये द्रविड़ जनजाति है जो अधिकांशतः झारखण्ड के पलामू में केन्द्रित हैं। इसके अतिरिक्त ये राँची, हजारीबाग, लातेहार जिलों में भी रहते हैं। मध्यकाल के प्रारंभ से ही चेरो जनजाति पलामू में रहते थे, जहाँ इन्होंने लगभग 200 वर्षों तक शासन भी किया। इनके शासनकाल के दौरान इन्होंने पलामू क्षेत्र में विकासात्मक कार्य किया, जैसे नहरों का निर्माण आदि जिनमें प्रमुख नाम राजा मेदिनी राय (1658–1674) का आता है।[2] यह एक न्यासी राजा थे तथा उनके युग को चेरो राज्य का स्वर्णयुग कहा जाता था। इसके विषय में आज भी लोकगीत गाए जाते हैं, जिसके कुछ बोल इस प्रकार हैं–

''धनी–धनी हो राजा मेदनिया,
घर–घर बाजे मथनियाँ''

इनके नाम पर ही पलामू का नामकरण मेदिनी नगर रखा गया है। चेरो जनजाति की विशेषता यह थी कि चेरो राजवंश ने कभी भी किसी भी अधीनता को स्वीकार नहीं किया और मजबूरन कभी किया भी तो अधिक दिनों तक अधीन नहीं रहे। मध्यकाल में इनका जीवन काफी समृद्ध रहा लेकिन धीरे–धीरे इनके ऊपर बाह्य हस्तक्षेप हुए जिससे इनके जीवन में काफी परिवर्तन आया और अन्य जनजातियों की तरह ही इनका जीवन भी संघर्षमय हो गया।

चेरो जनजाति का परिचय :

सम्पूर्ण भारत में मात्र झारखण्ड ही वह राज्य है जहाँ आर्य, द्रविड़, आग्नेय ये तीन सांस्कृतिक धाराएँ आकर मिली। झारखण्ड में पाए जाने वाले द्रविड़ जनजातियों में सबसे प्रमुख उराँव है, उनके बाद चेरो का स्थान आता है। यह द्रविड़ जनजाति रोहतास क्षेत्र से पलामू में आकर बसे तथा यही मध्यकाल में लगभग 200 वर्षों तक शासन भी किए। चेरो राज्य का जब पतन हो गया उसके पश्चात् भी इस जनजाति के अधिकांश लोग जमींदारों की तरह ही बने रहे किन्तु इनकी भूमि को अन्य लोगों द्वारा हस्तगत किया जाने लगा और 1974 ई0 के आते–आते इनके पास अल्प मात्रा में ही भूमि रह पायी।[3] वर्ष 1947 ई0 तक झारखण्ड में इनकी जनसंख्या लगभग 30 हजार थी जो वर्ष 2011 के जनगणना के अनुसार इनकी जनसंख्या बढ़कर 95,575 हो गयी है जो कुल जनजातियों का 1.11 प्रतिशत हैं।[4] इस आदिवासी समुदाय की आबादी सम्पूर्ण देश में लगभग 2 लाख है, जो मुख्य रूप से ग्रामीण इलाकों में निवास करती है।

चेरो जनजाति की सामाजिक संचरना :

चेरो जनजाति की सामाजिक संरचना मुख्य रूप से गोत्र पर आधारित है, जो एक ही प्रकार के कुल या वंश होते हैं। यह कुल एक ही पूर्वज से उत्पन्न होता है। इसी के आधार पर इस जनजाति के सामाजिक संबंध और सामाजिक गतिविधियों का अध्ययन कुछ इस प्रकार किया जा सकता है–

* असिस्टेंट प्रोफेसर (इतिहास विभाग), नेट, संत जेवियर्स कॉलेज महुआडांड़, लातेहार, झारखंड
ई–मेल : kumarianjali1896@gmail.com

वंश की उत्पत्ति :–

चेरों वंश की उत्पत्ति के विषय में एक किवदंती प्रचलित है, इसके अनुसार एक राजा हुआ करते थे जो बुदेलखंड के घुरगुमती के थे। इनकी इकलौती पुत्री के विषय में एक ब्राह्मण द्वारा बताया गया कि कन्या का विवाह कुण्डली के अनुसार एक मुनि से होगी। यह सुनते ही राजा ने यह तय किया कि जिस भी मुनि से सबसे पहले राजा की भेंट होगी उसी को वह अपनी पुत्री सौंप देगा। यह संकल्प करके राजा अपनी पुत्री के साथ जंगल गए और कुमांयू के मोरंग क्षेत्र से जब वे गुजर रहे थे तभी उन्होंने एक टीला देखा जो बाल्मीकियों द्वारा तपस्या कर रहे मुनि के ऊपर बनाया गया था। तत्पश्चात् राजा ने उस टीले को साफ किया और मुनि को अपनी पुत्री सौंप दिया। यह मुनि च्यवन ऋषि थे और इसी दम्पति से चेरो वंश की उत्पत्ति मानी जाती है।[5]

उपविभाजन तथा किल्लियाँ :–

चेरो जनजाति दो उप–भागों में विभाजित है जो बारह हजारी तथा तेरह हजारी कहे जाते हैं। इनमें बारह हजारी स्वयं को श्रेष्ठ मानते हैं और बबुआन कहे जाते हैं। ऐसा माना जाता है कि चेरो राजवंश जो पलामू क्षेत्र में शासन करते थे इसी उप–भाग के थे। वहीं तेरह हजारी को बीरबंधिया कहा जाता है।[6]

इसी प्रकार खरवार को अठारह हजारी कहा जाता है, ऐसा कहने के पीछे का कारण यह बताया जाता है कि जब भागवत राय द्वारा परगना पर कब्जा किया गया था तब उनके द्वारा उनकी सेना में 12,000 चेरो तथा 18,000 खरवार को भर्ती किया गया था।[7]

चेरो जनजाति मुख्य रूप से 7 किल्लियों में विभाजित हैं, जो इस प्रकार हैं– मौआर, कुंवर, रौतिया, सनवत, मांझी, सोहनैत एवं महतो।[8] इनके समाज में इन किल्लियों के अलग–अलग कार्य थे जैसे– मौआर ग्राम का मालिक होता था, कुंवर को गाँव के राजा की संज्ञा दी गयी, मांझी व्यवस्था का मालिक होता था तो वहीं रौतिया रैयतदार हुआ करता था। ज्ञातब्य है कि कुंवर, मौआर और सनवत द्वारा आपस में वैवाहिक संबंध स्थापित किया जाता था लेकिन सोहनैत, मांझी, महतो और रौतिया किल्लियों से वैवाहिक संबंध स्थापित नहीं किया जाता था। अन्य जनजातियों की भांति ही इस जनजाति में भी इनके द्वारा उपनाम किल्लियों के नाम पर नहीं रखा जाता था, बलिक ये लोग अपने नाम के आख़िर में 'सिंह' उपनाम को जोड़ते हैं।

पैतृक संपत्ति :–

चेरो जनजाति का समाज पितृसत्तात्मक था, जिसमें पिता घर का मुखिया हुआ करता था तथा घर के मुख्य फैसला में पिता का निर्णय महत्वपूर्ण होता था। पैतृक संपत्ति के संबंध में साधारणतया पिता अपने जीवन काल के दौरान ही संपत्ति का बंटवारा अपने सभी पुत्रों में बराबर भाग में कर देता था। इस हिस्से में पुत्रियों को शामिल नहीं किया जाता था किन्तु जिस परिवार में पुत्र नहीं होते थे उस स्थिति में बड़े–बुजुर्गों की सलाह पर कन्या का पति घर–दामाद के रूप में रहकर संपत्ति का अधिकार प्राप्त कर सकता था। वहीं विधवा महिला के भरण–पोषण हेतु उसे पारिवारिक संपत्ति का हिस्सा प्रदान किया जाता था।

शासन व्यवस्था :–

चेरो समाज के गाँवों को डीह कहा जाता था जिसके प्रमुख डीहवार कहे जाते थे। इनके स्वशासन व्यवस्था को भैयारी पंचायत कहा जाता था, जिसके कुछ प्रमुख अधिकारी महतो या सभापति, छड़ीदार और पंच हुआ करते थे। इन अधिकारियों का पद शुरूआत में वंशानुगत था लेकिन बाद में इनका चुनाव किया जाने लगा।

सभापति अथवा महतो का मुख्य कार्य सभा का सभापतित्व करना, पंच द्वारा सुनाए गए फैसलों को लागू करना, ग्रामीण उत्सावों एवं ग्रामीण देवी–देवताओं की पूजा करवाना, समाज में संगठन बनाए रखना और किसानों अथवा रैयतों द्वारा मालगुजारी प्राप्त करना था। छड़ीदार का मुख्य कार्य इन सभी कार्यों में सभापति के सहायक के रूप में कार्य करना था। वहीं पंचायत में पंचों का काफी महत्वपूर्ण स्थान था। उनके द्वारा जो निर्णय सुनाए जाते थे, वो सभी के लिए मान्य होता था क्योंकि इन पंचों का चुनाव किया जाता था तथा इसकी बैठक में ग्राम के लगभग सभी वयस्कों द्वारा भाग लिया जाता था। पंचों के लिए यह अनिवार्य था कि वे अपने जाति–समाज में व्याप्त सभी प्रकार के नियमों और कानूनों की जानकारी अवश्य रखे।

कालांतर में सरकार द्वारा सरकारी कर्मचारी और संस्था में पंचायती कार्यों को किया जाने लगा इसके अतिरिक्त इनके समाज में अन्य लोगों के साथ संपर्क बढ़ने के कारण इस भैयारी पंचायत का प्रभाव कम हो गया।

चेरों जनजाति की सांस्कृतिक विशेषताएँ :

चेरो जनजाति की सांस्कृतिक विशेषताएँ मुख्य रूप से उनकी परंपराओं, रीति–रिवाजों के माध्यम से दृष्टिगोचर होता है। इन सांस्कृतिक विशेषताओं को इस प्रकार समझा जा सकता है–

गृह निर्माण एवं आवश्यक सामग्री :–

चेरो जनजातियों के मकान सामान्यतः मिट्टी के बने होते थे, जिनके ऊपर खपड़ा अथवा फूस द्वारा छत का निर्माण किया जाता था। इनके घर साफ–सुथरे होते थे, जिसे दो–तीन दिन के अंतराल में मिट्टी से लिपने का कार्य की किया जाता था। यह व्यवस्था वर्तमान समय में भी देखने को मिलता है। मकानों के बीच में एक आंगन बना होता था तथा मकान में 2 से 8 तक कमरे हुआ करते थे। इसके साथ ही मकान के सामने बारी होती थी, जहाँ वे आवश्यक सब्जियाँ उगाने का कार्य करते थे। मकान के दरवाजे प्रायः उत्तर दिशा की ओर खुलते थे।

चेरो जनजातियों द्वारा प्रायः मिट्टी के बर्तनों का प्रयोग किया जाता था जिसे वे कुम्हार से लेते थे। इसी प्रकार 'चटाई' उराँवों से, 'टोकरी' डोम से लिया करते थे। धनी चेरो द्वारा प्रायः कांसा के बर्तन को उपयोग में लाया जाता था। भात–दाल पकाने के लिए मिट्टी की 'चटी' का प्रयोग किया जाता था तथा सब्जी पकाने के लिए 'कराही' का प्रयोग होता था। वहीं सब्जी चलाने के लिए 'कलछुल', रोटी सेकने के लिए 'चिमटा' रोटी बेलने के लिए 'बेलना–पीढ़ा' का प्रयोग किया जाता था। सोने के लिए 'खटिया', ओढ़ने के लिए 'लेदरा', बैठने के लिए 'मचिया', बिछाने के लिए 'पटिया' का प्रयोग किया जाता था। इनके द्वारा लकड़ी से एक 'घिड़मिड़' अथवा 'घिड़सिड़' बनाया जाता था जहाँ वे पीने के लिए पानी घड़ा में भरकर रखते थे, साथ ही घड़ा को रखने के लिए 'नेठो' का प्रयोग करते थे। इसके अतिरिक्त अन्य वस्तुओं में 'हंसुआ', 'झाड़ू', 'लालटेन', 'छाता', 'टांगी', 'साबल', 'ढेकी', 'जांता', 'तरजुई', 'बक्सा', 'नाधा', 'हेंगा', 'जोती', 'ओखर', 'चलनी', 'बाल्टी', 'लोटा', 'गिलास', 'थारी' इत्यादि का प्रयोग घरों में किया जाता था।

वस्त्र एवं आभूषण :–

चेरो जनजाति में 4–10 वर्ष के बच्चों को 'भगई' पहनाया जाता था। प्रारंभ में स्त्री–पुरूषों द्वारा ऊपरी भाग में कपड़ा नहीं पहना जाता था किन्तु समय के साथ तथा अंग्रेजों के आगमन के पश्चात् बाह्य संपर्क स्थापित होने से उनके पोशाक में भगई के साथ कमीज–फ्रॉक भी पहना जाने लगा। इसके साथ ही महिलाएँ 'झुला' का प्रयोग करने लगी और इसके साथ अधोवस्त्र के रूप में 'साड़ी' पहनती थी। पुरूष प्रायः 'कमीज' और 'गंजी' के साथ 'धोती' पहनते थे। ठंड के समय 'कंबल' और मोटी चादर जिसे 'दोहर' कहा जाता था, का प्रयोग करते थे। पैर में चप्पल के स्थान पर लकड़ी के बने चप्पल का प्रयोग किया जाता था जिसे 'खटनही' या 'बड़ाव' कहा जाता था।

चेरो जनजाति में आभूषण के रूप में 'कर्णफूल', 'कनढप्पा', 'छुछिया', 'हंसुली', 'बाजुबंद', 'भुंड़िया', 'केकना', 'पहुआ', 'चूरी', 'अंगूठी', 'पेरी', 'करधनी', 'बिछिया', 'हरसा' इत्यादि का प्रयोग किया जाता था। इसके अतिरिक्त चेरो महिलाओं में 'गोदना गोदवाने' का कार्य भी किया जाता था इसके बिना उन्हें खेत–खलिहान में प्रवेश नहीं दिया जाता था। इसे प्रायः 10 वर्ष की आयु में ही गोदवा लेती थी। गोदना को हाथों, बाजू, पैरों, चेहरे पर, गला इत्यादि में गोदवाने की प्रथा प्रचलित थी। इसे वे हार जैसी नमूनों की आकृति बनवाती थी। इसके अतिरिक्त फूल, सितारे, चाँद, सूर्य, पशु–पक्षी की आकृति भी बनवायी जाती थी।[9]

भोजन :–

भोजन पकाने के लिए चूल्हा प्रायः मकान के दक्षिण–पश्चिम भाग में बनाया जाता था। इनके प्रमुख भोजन के रूप में दाल–भात था किन्तु इसके अलावा भी जौ, कोदो, मडुआ, तिल, उरद, कुर्थी, सावां आदि का प्रयोग किया जाता था।[10] अधिकांश चेरो शाकाहार भोजन का ही प्रयोग करते थे लेकिन मांसाहार भी इनमें प्रचलित था। ये जनजाति पेय पदार्थ के रूप में महुआ से बनी शराब का प्रयोग करते थे, जबकि अन्य जनजातियों में 'हड़िया' का प्रयोग किया जाता था। इसके अतिरिक्त गाय–भैंसों से दूध–दही, घी भी प्राप्त होता था।

नृत्य संगीत :–

चेरो जनजाति में झारखण्ड के अन्य जनजातियों की भांति नृत्य अपेक्षाकृत कम लोकप्रिय थी, किन्तु होली में पुरूषों द्वारा फगुआ गीत के साथ नृत्य भी किया जाता था तो विवाह के मड़वा में महिलाओं द्वारा झूमर खेला जाता था। वहीं इस जनजाति ये संगीत भी काफी लोकप्रिय थी, जो विवाह, जन्म, पर्व–त्योहारों एवं अन्य उत्सवों के अवसर पर गाए जाते थे। इनके द्वारा प्रयोग किए जाने वाले वाद्य यंत्रों में प्रमुख रूप से

'मांदर', 'नगाड़ा', 'घाघर', 'पांजन', 'झाल', 'ढोलक' इत्यादि का प्रयोग किया जाता था। मांदर के विषय में कहा जाता है कि गाँव के गम्हेल डीहवार से शक्ति प्राप्त किया, जिसको जगाने के लिए मांदर का प्रयोग करता था, जिससे मांदर वाद्ययंत्र हो गया। विभिन्न पर्व–त्योहारों के समय अलग–अलग धुन में गीत गाए जाते थे जैसे– करमगीता, चैता, होली, फगुआ, जदुरा इत्यादि।

पर्व–त्योहार :–

चेरो जनजाति के पर्व–त्योहारों में हिन्दूओं का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इनके प्रमुख पर्व में छठ व्रत का स्थान आता था जो कार्तिक और चैत मास में होता था, जिसमें सूर्य को अरग दिया जाता था। वहीं दूसरी प्रमुख पर्व 'रामनवमी' को माना जाता था, जो चैत माह में मनाया जाता था। इसके अंतर्गत कुल देवता पर प्रसाद के रूप में 'मोहनभोग', 'ठेकुआ', 'रोट' आदि चढ़ाया जाता था तथा 'महाबीर स्थान' पर महाबीरी झंडा और 'शिव–स्थान' पर भी झंडा को बांस के सहारे गाड़ा जाता था।

इस जनजाति द्वारा 'सरहुल–पुजा' बैशाख महिने में मनाया जाता था, जिसके पश्चात् ही कृषि का कार्य प्रारंभ किया जाता था। वहीं आषाढ़ के महीने में 'हरियारी' पूजा प्रचलित थी तथा सावन महीने में 'सावनी पूजा' की जाती थी।

भादो महिने में इनकी प्रमुख पर्व 'करमा पूजा' आती थी जो भाई–बहन का पर्व है। इसमें लड़के–लड़कियाँ आंगन में करम वृक्ष की शाखा गाड़ देती थी और सारी रात करम गीत गाते थे तथा नृत्य भी करते थे।

इन त्योहारों के अतिरिक्त भी इस जनजाति द्वारा अश्विन महिने में जितिया व्रत, तीज–व्रत भी महिलाओं द्वारा किया जाता था। अन्य त्योहारों में 'अगहनी पूजा', 'गम्हेल' तथा 'दुआरचार की पूजा' पौष माह में 'तिलसंक्रांत पूजा', फाल्गुन मास में 'फगुआ पूजा' तथा 'होली भी इनके द्वारा मनाया जाता था।

धार्मिक मान्यता :–

चेरों जनजाति के देवी–देवता सामान्यतः हिन्दू देवी–देवताओं ही थे किन्तु इनके अतिरिक्त कुछ प्रमुख देवी–देवता भी थे जिनकी पूजा–अर्चना इस जनजाति में किया जाता था। 'गाहौल–स्थान' में गाँव के एक प्रमुख पेड़ के नीचे इनके प्रमुख देवी–देवता थे, जिन्हें 'रक्सेल', 'रक्सेलिन' और 'दरहा' कहा जाता था। इनके इस्ट देवता के रूप में 'डीहवार–गम्हेल' थे। इनका पूजा स्थान 'मांडर' कहलाता था जिसका पुजारी 'बैगा' होता था तथा बैगा का सहायक 'चटिया' कहलाता था। इनके अतिरिक्त अधिकांश लोग 'शिव–पार्वती' की पूजा किया करते थे। इन देवी–देवताओं के मूर्ति और मंदिर नहीं होते थे बल्कि इनका प्रतीक बनाकर ही इनकी पूजा की जाती थी।

बच्चे का जन्म :–

चेरो जनजाति में बच्चों का विशेष महत्व था, इन्हें ईश्वर की कृपा समझा जाता था। विवाह के पश्चात् संतान उत्पत्ति की कामना की जाती थी, जिन स्त्रियों को संतान नहीं होते थे उनको समाज में अपशकुन समझा जाता था। बांध्या स्त्री तथा वे पुरूष जो पिता नहीं बन सकते थे समाज में उनका परित्याग करने की छूट थी।

गर्भधारण के दौरान ग्रहण देखने के लिए बड़े–बुजुर्गों द्वारा मना किया जाता था। शिशु के रूप में पुत्र अथवा पुत्री दोनों का स्वागत किया जाता था। प्रसव के लिए 'चमईन' जिसे 'लक्षमिनिया' भी कहा जाता था, को बुलाया जाता था जो काफी अनुभवी हुआ करती थी। उनके द्वारा गर्भस्थ महिला की मालिश भी कराई जाती थी तथा घर की बुजुर्ग महिला के साथ 'चमईन' द्वारा प्रसव कराया जाता था और 'हंसुआ' से बच्चे का नाल काटा जाता था। जन्म के छह दिन बाद 'छठी' कराया जाता था, जिसके बाद ही बच्चे को नया वस्त्र पहनाया जाता था। जन्म के पाँच से छह महीने में 'मुँहजुठी' कराया जाता था जिसमें घर के मुखिया द्वारा बच्चे को 'खीर' खिलाया जाता था।

विवाह :–

चेरो समुदाय में विवाह अपनी जाति में ही किया जाता था। लड़के–लड़कियों का विवाह प्रायः 12 वर्ष की आयु में ही कर दिया जाता था।[11] किन्तु कालांतर में यह आयु बढ़ कर 16 से 20 वर्ष हो गया और इसके पश्चात् हुए विवाह को देर से हुआ विवाह माना जाता था। विवाह से संबंधित एक उक्ति प्रचलित थी जो आज भी प्रचलित है, यह इस प्रकार है–

"बारह तक वर, बीस तक बरांठ, उसके बाद बुढ़ांठ"[12]

विवाह संबंधित बात–चीत की शुरूआत 'अगुआ' के माध्यम से होती थी, जो दोनों परिवारों के बीच मध्यस्थता का कार्य करता था। इस समुदाय में अन्य जनजातियों के विपरीत तिलक लेने की प्रथा का प्रचलन था, इसके अलावा वधु–मूल्य को 'दस्तूरी' अथवा 'झाँपी' कहा जाता था। इसके साथ ही लड़का–लड़की के 'राशियों' का मिलान करके 'पत्रा' और 'पंडित' के माध्यम से विवाह का 'मुहूर्त' निकाला जाता है।

विवाह तीन प्रकार के होते थे, जिसे 'डोला', 'घराऊ' और 'चढ़ाऊ' के नाम से जाना जाता था। यदि कन्या पक्ष गरीब हो तो 'डोला' या 'घराऊ' विवाह किया जाता था, जिसमें कन्या को वर के घर ले जाकर विवाह किया जाता था, जबकि 'चढ़ाऊ' विवाह में वर पक्ष कन्या के घर आकर विवाह करके कन्या को ले जाते थे। विवाह के दौरान 'मंड़वा' में 'हल्दी', 'चुमावन' आदि के समय महिलाओं द्वारा गीत गाया जाता था तथा वहीं झूमर भी खेला जाता थी ।

अंत्येष्टि संस्कार :–

चेरो जनजाति में अंत्येष्टि संस्कार काफी महत्वपूर्ण माना जाता था। मृत्यु के पश्चात् शव को चादर से ढंक कर उत्तर–दक्षिण की दिशा में रख दिया जाता था तथा श्मशान घाट में उन्हें जला दिया जाता था। किन्तु कोई खास बिमारी जैसे हैजा और चेचक से मृत्यु होने पर मृतक को दफनाया जाता था, शिशु के मृत्यु होने पर भी उन्हें दफना दिया जाता था।

जलाने या दफनाने के पश्चात् लोग नदी में स्नान कर मृतक के घर लौटकर दुब घास, जल और लोहा को छूकर अपने–अपने घर लौट जाते थे।[13] मृत्यु से 10 दिनों तक 'छुतका' माना जाता था, जिसमें तेल, हल्दी का प्रयोग वर्जित होता था साथ ही नाखुन, बाल काटना भी मना होता था। 10वें दिन नाई द्वारा पुरूषों के बाल–दाढ़ी तथा नाखून काटता और स्त्रियाँ नाखून कटवाती थी। इसके साथ ही धोबी द्वारा वस्त्र धुलवाने की क्रिया करायी जाती थी। इसके पश्चात् ब्राह्मणभोज कराया जाता था, जिसमें ब्राह्मण, कटाह को भोजन कराया जाता था तथा 13वां दिन बर्खी कराया जाता था।

चेरो जनजाति के अंत्येष्ठी संस्कार की विशिष्ट बात यह थी कि भोज के दिन 'छाही भितराया' जाता था जिससे मृतक को 'पुरखा' का में स्थान दिया जाता था। किसी भी महत्वपूर्ण समारोह जैसे विवाह, मिलने जुलने के लिए 'जतरा' का आयोजन जैसे पवित्र उत्वसवों में 'पुरखा' की पुजा पहले की जाती थी।

उपर्युक्त किए गए सामाजिक और सांस्कृतिक अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि चेरो जनजाति अपनी विशिष्ट संस्कृति, समाज और परंपराओं से जानी जाती है, किन्तु वर्तमान समय में इनकी संस्कृति और समाज में आधुनिकता का प्रभाव पड़ने से इनमें काफी परिवर्तन नजर आ रहा है। सरकार द्वारा चलाए गए विकासात्मक कार्यों के माध्यम से ये आगे तो बढ़ रहे हैं किन्तु आधुनिकता का प्रभाव पड़ने से कहीं न कहीं इनकी सांस्कृतिक विरासत विलुप्त होती जा रही है, जिसे सरकार द्वारा संरक्षण एवं सहायता की आवश्यकता है। चेरो जनजाति की साक्षरता दर 63.6 प्रतिशत है।[14] इसे बढ़ाने तथा समाज के सतत विकास के लिए इस समूह के लोगों द्वारा प्रत्येक वर्ष जीवित पुत्रिका व्रत, जिसे 'जितिया पर्व' कहा जाता है, के पारन के दिन 'चेरो मिलन समारोह' का आयोजन किया जाता है, जिसमें चेरो जनजाति द्वारा प्राप्त किए गए उपलब्धियों जैसे उच्च 'शिक्षा प्राप्त करना' कोई अधिकारी बनना, कोई विशिष्ट या कल्याणकारी कार्य करना आदि को समान्नित किया जाता है ताकि लोगों में शिक्षा–समाज एवं संस्कृति के महत्व को बढ़ावा मिल सके एवं जागरूकता को फैलाया जाय। अतः ऐसे कार्यों को सरकार द्वारा प्रोत्साहन दिए जाने की आवश्यकता है ताकि इनका समुचित विकास हो सके।

संदर्भ सूची :

1प भारत सरकार, जनजातीय कार्य मंत्रालय, जनगणना, 2011

2प पी0सी0 राय चौधरी :बिहार जिला गजेटियर, पलामू

3प डॉ0बी0 वीरोत्तम : द नागवंशीज एंड द चेरोज

4प झारखण्ड सरकार, झारखण्ड में जनजातियों की जनसंख्या, जनगणना 2011

5प झारखण्ड सरकार, संस्कृति निदेशालय, चेरो

6प डी0एच0ई0 संडर : फाइनल रिपोर्ट ऑन द सर्वे एंड सेट्लमेंट ऑफ पलामू, कलकत्ता, 1898

7प झारखण्ड सरकार, संस्कृति निदेशालय, चेरो

8प इ0टी0 डाल्टन : डिस्क्रीप्टीव एथनोलॉजी ऑफ बंगाल, 1872

9प डी0एच0ई0 संडर : फाइनल रिपोर्ट ऑफन द सर्वे एंड सेट्लमेंट ऑफ पलामू, कलकत्ता, 1898

10ण डॉ0 राम कुमार तिवारी : झारखण्ड की रूपरेखा
11ण डी0एच0ई0 संडर, : फाइनल रिपोर्ट ऑन द सर्वे एंड सेट्लमेंट ऑफ पलामू, कलकत्ता, 1898
12ण डॉ0 बी0 वीरोत्तम : झारखण्ड इतिहास एवं संस्कृति
13ण हरी मोहन : द चेरो, ए स्टडी इन एकल्चरेशन, ट्राइबल इंस्टिच्यूट, राँची
14ण भारत सरकार : जनजातीय कार्य मंत्रालय, जनगणना, 2011

बौद्ध साहित्य में प्रतिबिम्बित काशी के उद्योग और व्यापार

डॉ. स्वस्तिक सिंह*

बौद्ध साहित्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि छठीं शताब्दी, ई०पू० में मध्य गंगा घाटी में स्थित षोडश महाजनपदों में काशी मुख्य जनपद था। राजनैतिक महत्व के अतिरिक्त इसकी राजधानी वाराणसी व्यापार की प्रमुख केन्द्र थी। प्रस्तुत शोध–पत्र में बौद्ध साहित्य से प्राप्त सामग्री के आधार पर यहाँ के प्रमुख व्यवसाय अथवा उद्योग–धन्धों और व्यापार का अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयास कर रहा हूँ।

जातकों और बौद्ध साहित्य में वाराणसी की प्रसिद्धि मुख्यतः यहाँ के व्यवसाय और व्यापार के कारण थी। जातकों से यहाँ के निम्नलिखित उद्योगों की जानकारी प्राप्त होती है।

वस्त्र उद्योग –

लगभग समस्त बौद्ध साहित्य काशिक वस्त्र के विवरणों से भरा है। जाताकें में **काशीकुत्तम**[1] का उल्लेख है। इसका अर्थ काशी के बने वस्त्रों से है। परन्तु कहीं–कहीं इनको **काशीय**[2] भी कहा गया है। **महापरिनिब्बान सुत्त**[3] से वाराणसी के वस्त्र की प्रसिद्धि ज्ञात होती है। इस सुत्त का टीकाकार विहित कप्पास (कुंदी किया हुआ कपड़ा) पर टीका की है कि बुद्ध का पार्थिव शरीर वाराणसी के बने कपड़े से लपेटा गया था तथा वह इतना महीन और गफ बुना गया था कि तेल तक नहीं सोख सकता था। **महापरिनिब्बान सुत्त**[4] के एक अन्य स्थल पर प्राप्त वर्णन से ज्ञात होता है कि बनारसी वस्त्र जिस तरफ देखिए नीला

सोखदिखाई देता था अथवा नील झलक मारता था। नीले के अतिरिक्त वह पीला, लाल और सफेद भी होता था।[5] **मज्झिम निकाये**[6] में वाराणसी कपड़े की **वाराणसेय्यक** की कहा गया है। इसका 'टीकाकार' बनारसी कपड़े की इसलिए प्रशंसा करता है क्योंकि वहाँ अच्छी कपास पैदा होती थी, वहाँ की कत्तिनें और बुनकर निपुण होते थे और वहाँ का नरम पानी धुलाई के लिए बहुत अच्छा पड़ता था। बनारसी कपड़े दोनों तरफ में मुलायम और चिकने होते थे।[7]

वाराणसी के वस्त्रों के उत्पादन के कारण यहाँ की अच्छी कपास की खेती थी। **तुण्डिल जातक** में वाराणसी के आस–पास कपास के खेतों का उल्लेख है।[8] महिलायें इन खेतों की रखवाली करती थीं।[9] वाराणसी के लोग स्त्रियों द्वारा महीन सूत कतवाते (**सुखुमसुत्तानि कंतित्वा**) थे और उनकी गंडिया बनवाते थे।[10]

सूती वस्त्रों के अतिरिक्त वाराणसी में क्षौम तथा सम्भवतः ऊनी वस्त्रों को भी बनाया जाता था।[11] एक जातक में वाराणसी के रेशमी वस्त्र का उल्लेख हुआ है।[12] यहाँ क्षौम मिश्रित कंबल भी बनते थे। **महावग्ग** के अनुसार जीवक कुमार भृत्य को ऐसा ही कंबल काशिराज से उपहार में मिला था।[13] महावग्ग में ही एक–दूसरे स्थल पर कहा गया है कि एक समय काशी नरेश ने जीवक की सेवाओं से प्रसन्न होकर उसे अड्ढकासिक कंबल उपहार भेजा था।[14] राइस डेविड्स ने अड्ढकासिक का आंग्ल अनुवाद आधे वाराणसी कपड़े से बना हुआ ऊनी वस्त्र किया है।[15] बुद्ध घोष ने कासी का अर्थ एक हजार कार्षापण किया है तथा अड्ढकासीयं का पाँच सौ और इस तरह अड्ढकासी का अर्थ पाँच सौ कार्षापण मूल्य वाला वस्त्र किया है।[16] यदि इस व्याख्या को हम स्वीकार करें तो यह अत्यन्त कीमती वस्त्र था। परन्तु मोतीचन्द्र का अनुमान है कि अड्ढकासीयं कोई बहुत बारीक वस्त्र था क्योंकि आज भी बारीक सूती कपड़े को अद्धी कहते हैं।[17] जातक में कासिकसूचीवत्थ का उल्लेख महत्वपूर्ण है।[18] सम्भवतः यह काशी में प्रचलित वस्त्रों में कसीदाकारी का सूचक है।

सुगन्धित द्रव्य तथा चन्दन उद्योग–

बौद्ध साहित्य से ज्ञात होता है कि काशी में सुगन्धित द्रव्यों के उद्योग थे तथा उनका व्यापार होता था। जातकों[19] तथा **अंगुत्तर निकाय**[20] में काशिक चंदन का उल्लेख प्राप्त होता है। जातकों में काशी बिलेयन का वर्णन हुआ है, इससे किसी इत्र जैसे सुगन्धित द्रव्य का आभास होता है।[21] कासिक चन्दन शब्द के सन्दर्भ में कुछ विद्वानों का अनुमान है कि सम्भवतः चंदन का आयात होता था और यहाँ केवल इसके चन्दन का व्यापारिक नाम कासिक चंदन कि वरुणा नदी पड़ गया।[22] मोतीचन्द्र ने खोज कर पता लगाता था कि वरूणा

* अध्यक्ष, प्राचीन इतिहास विभाग, गाँधी शताब्दी स्मारक पी.जी. कालेज, कोयलसा, आजमगढ़

नदी के किनारे चन्दन के बहुत से वृक्ष थे तथा उनके अनुसार खजुरी के पास तो प्रायः सभी बागों में चदन के वृक्ष हैं।[23] ऐसा प्रतीत होता है कि छठीं शताब्दी ई०पू० में काशी में बहुत अच्छा चन्दन होता था।

काष्ठ उद्योग –

जातकों से ज्ञात होता है कि वाराणसी में बढ़ईगिरि का कार्य विकसित अवस्था में था। एक जातक[24] के अनुसार ब्रह्मदत्त राजा के समय वाराणसी से थोड़ी ही दूरी पर एक बढ़इयों का ग्राम था जिसमें पाँच सौ बढ़ई रहते थे। वे नाव द्वारा नदी के ऊपर जाकर, जंगल में घुसकर घरों के लिए धरन और तख्ते चीरते (**गेहसंभारदारुणि कोट्टत्वा**) थे। वे एक महल या दो महले घरों के ढाँचे करते थे (**एक भूमि–द्विभूमिकादि भेदे गेहे सज्जेत्वा**)। फिर बढ़ई खंभे से लेकर नीचे के समस्त भागों पर संख्या देते थे (**थंभतो षट्ठाय सब्बदारुसु सज्जं कत्वा**)। इनको नाव पर लादकर नगर में लाते थे और फिर लोगों की इच्छानुसार घर बनाते थे। उन्हें मजदूरी कार्षापणों में मिलती थी। मोतीचन्द्र के अनुसार, वाराणसी में सम्भवतः बढ़इयों का एक मुहल्ला था, जिसमें एक हजार बढ़इयों का परिवार रहता था।[25] जातक कथाओं से ज्ञात होता है कि उनका दावा था कि वे परन्तु जेब कुर्सियाँ, पलंग और घर बना सकते थे, परन्तु जब बहुत से लोगों से पेशगी ले लेने पर और काम न करने की जानकारी मिली कि उनका यह दावा झूठा था। जातकों से ज्ञात होता है कि ऐसा करने पर ग्राहकों ने इतनी यातना दी कि उन्हें नगर छोड़कर भाग जाना पड़ा।[26] जातकों से यह भी जानकारी मिलती है कि वाराणसी में अच्छे से अच्छे संगतराश भी होते थे।[27]

हाथी दाँत उद्योग –

जातक कथाओं में वाराणसी में हाथी दाँत के बाजार का उल्लेख मिलता है जहाँ की दंतकारवीथि में दंतकार चूड़ी आदि बनाते थे। एक कथा के अनुसार उनको हाथी दाँत का काम बनाते देख एक गरीब आदमी ने कहा कि यदि मैं हाथी दाँत लाऊँ तो क्या तुम उसे ले लोगे।[28]

शिकार उद्योग –

जातकों के अनुसार गंगा के दोनों तटों पर शिकारियों के ग्राम थे और उनमें शिकारियों के पाँच–पाँच सौ परिवार रहते थे।[29] **मोरजातक[30]** से विदित होता है कि एक बहेलिया, जिसे राजा ने सुनहरे मोर को पकड़ने को कहा, जो वाराणसी के पास एक निषाद ग्राम में रहता था और शिकार ही उसका व्यवसाय था।

व्यापार और व्यापारिक मार्ग –

वाराणसी व्यापार का एक प्रमुख केन्द्र था। वाराणसी से बराबर सार्थ (कारवाँ) चला करते थे। **विनयपिटक[31]** तथा **धम्मपद अट्ठकथा[32]** से ज्ञात होता है कि एक मार्ग काशी से राजगृह जाता था। **विनयपिटक** से ही ज्ञात होता है कि वाराणसी से तक्षशिला जाने के लिए एक मार्ग था और दूसरा श्रावस्ती के लिए जो भदिया होकर वहाँ पहुँचता था।[33] वाराणसी तथा वेरंजा के मध्य दो मार्ग थे। एक तो सोरय्य होकर जाता था और दूसरा प्रयाग में गंगा पार करके वाराणसी पहुँचता था और वहाँ से वैशाली को चला जाता था।

बौद्ध साहित्य से वाराणसी के व्यापार सम्बन्धी कुछ रोचक सामग्री प्राप्त होती है। **सुत्तनिपात** में एक उल्लेख प्राप्त होता है कि वाराणसी का एक सार्थवाह पाँच सौ गाड़ियों के साथ सीमावर्ती देश जाकर वहाँ से चंदन लाया।[34] **धम्मपद** से जानकारी मिलती है कि एक व्यापारी लाल कपड़े से भरी पाँच सौ गाड़ियों को लेकर श्रावस्ती की ओर गया परन्तु बाढ़ के कारण नदी पार नहीं कर सका और नदी के इसी ओर उसे अपना माल बेच दिया।[35] एक जातक से ज्ञात होता है कि वाराणसी के अध्यवसायी व्यापारी अपना माल खच्चरों पर लादकर दूर–दूर तक बेचते फिरते थे।[36]

प्रमाणित जातकों में वाराणसी के सार्थवाहों की अनेक कथायें प्राप्त होती हैं जिनसे उनकी कार्य दक्षता प्रमाणित होती है। एक जातक में कहा गया है कि एक समय बोधिसत्त्व वाराणसी में एक सार्थवाह कुल में उत्पन्न हुए, उन्हें अपनी पाँच सौ गाड़ियों सहित साठ योजन का एक रेगिस्तान पार करना पड़ा।[37]

वाराणसी के व्यापारी समुद्री व्यापार भी करते थे। एक जातक कथा से ज्ञात होता है कि वाराणसी के ब्राह्मणों ने सुवर्णभूमि की यात्रा की थी[38] जहाँ चम्पा के व्यापारी माल से लदे जहाज को अधिक धन प्राप्त करने हेतु गये थे।[39] वाराणसी के व्यापारी ने व्यापार के लिए एक जहाज का निर्माण किया था। उसने जहाज को माल से लादा था। जहाज इतने विशाल थे कि एक ही जहाज में 700 व्यक्तियों का समूह यात्रा कर सकता था।[40] एक जातक में इस तथ्य का उल्लेख है कि दिसाकाक लेकर वाराणसी के व्यापारी समुद्री यात्रा को गये।[41] एक जातक के अनुसार वाराणसी निवासी एक युवा मिथिविन्दक ने जहाज का व्यवसाय प्रारम्भकिया और समुद्र यात्रा की ठानी और उसे समुद्र यात्रा में अनेक कष्ट उठाने पड़े।[42]

वाराणसी में उत्तरपथ के घोड़ों का भी व्यापार होता था। एक जातक कथा के अनुसार एक समय बोधिसत्त्व काशी नरेश के सब्बत्थक (पारखी) नियुक्त हुए। एक समय उत्तरापक्ष से व्यापारी पाँच सौ घोड़े लेकर वाराणसी आये। बोधिसत्त्व ने व्यापारियों को ही घोड़ों का मूल्य निर्धारित करने को कहा, लेकिन इसी लालची राजा ने अपने एक बदमाश घोड़े को इन घोड़ों के बीच में भेजा और उसने कई घोड़ों को काट लिया। इस प्रकार व्यापारियों को मजबूर होकर उनके मूल्य घटाने पड़े।[43] सिन्धु के अच्छे से अच्छे घोड़े वाराणसी में उपलब्ध थे।[44]

उपर्युक्त विवेचना से छठी शताब्दी ई.पू. में काशी के सम्मुनत उद्योग और व्यापार पर प्रकाश पड़ता है।

संदर्भ सूची

1. जातक, 6, पृष्ठ–47, 151; जातक 1, पृ० 335.
2. उपर्युक्त, 6, पृ० 500.
3. महापरिनिब्बान सुत्त, 5/26.
4. उपर्युक्त, 3/29.
5. उपर्युक्त, 3/30–32.
6. मज्झिम निकाय, 2/3/7.
7. मोतीचन्द्र, काशी का इतिहास, वाराणसी, 1985, पृ०47.
8. जातक, 3, पृ० 286.
9. उपर्युक्त, 6, पृ० 336.
10. उपर्युक्त
11. मोतीचन्द्र, वही
12. जातक, 6, पृ० 577.
13. महावग्ग, 8/1/4.
14. उपर्युक्त, 8/2.
15. मोतीचन्द्र द्वारा उद्धृत, वही।
16. उपर्युक्त
17. उपर्युक्त
18. जातक, 6, पृ० 144, 145, 154.
19. उपर्युक्त, 1, पृ० 331; 5, पृ० 302; गाथा 40.
20. अंगुत्तर निकाय, 3/391.
21. जातक, 1, पृ० 355.
22. मोतीचन्द्र, वही, पृ० 47.
23. उपर्युक्त
24. जातक, 2, पृ० 11.
25. मोतीचन्द्र, वही
26. जातक, 4, पृ० 159.
27. उपर्युक्त, 1, पृ० 478.
28. उपर्युक्त, 2, पृ० 139.
29. उपर्युक्त, 6, पृ० 71.
30. उपर्युक्त, 2, पृ० 36.
31. विनयपिटक, 1, पृ० 262.
32. धम्मपदअट्ठकथा, 1. पृ० 126.
33. विनयपिटक, 1. पृ० 189.
34. सुत्तनिपात अ02. पृ० 523 तथा आगे
35. धम्मपद, 3, पृ० 429.
36. जातक, 2, पृ० 109.
37. उपर्युक्त, 1, पृ० 108 आदि

38. जातक 4, पृ० 15.
39. जातक, 6, पृ० 34.
40. जर्नल ऑफ इण्डियन हिस्ट्री, 1954, जिल्द 32, भाग 2, पृ० 121.
41. जातक, 3, पृ० 384.
42. उपर्युक्त, 4. पृ० 2. आदि।
43. जातक, 2, पृ० 21, 22.
44. उपर्युक्त, 3, पृ० 198.

विजय दशमी पर्व का महत्व

प्रो. सरिता सिंह*

सवाल– विजय दशमी का पर्व क्यों मनाया जाता है ?

जवाब– विजय दशमी पर्व मनाने के पीछे दो पौराणिक मान्यताएं प्रचलित हैं– पहली मान्यता है, महिषासुर नाम के एक दैत्य ने सभी देवताओं को पराजित करके उनके राजपाट को छीन लिया था। ब्रहमा से मिले वरदान के कारण उसके पराक्रम के सामने कोई भी देवता टिक नहीं पा रहा था, तब सभी देवताओं के आग्रह पर महिषासुर के संहार के लिए ब्रहमा, विष्णु और महेश ने आदि शक्ति देवी दुर्गा का सृजन किया। देवी दुर्गा और महिषासुर के बीच नौ दिनों तक लगातार घमासान युद्ध होता रहा। युद्ध के दसवें दिन माता दुर्गा ने महिषासुर का बध करके उसकी पूरी सेना को परास्त किया और विजय प्राप्त की। महिषासुर का बध करने के कारण उन्हें महिषासुरमर्दिनी भी कहा जाता है। विजय प्राप्त करने के उपलक्ष्य में विजय दशमी का पर्व शारदीय नवरात्रि के दसवें दिन असत्य पर सत्य की जीत के रूप में मनाया जाता है। विजया, माता का एक नाम भी है। इसलिए इस पर्व को विजयादशमी भी कहा जाता है।

दूसरी मान्यता है – भगवान राम को मिले चौदह वर्ष के वनवास के दौरान जब लंका के राजा रावण ने माता सीता का अपहरण कर लिया था, तब भगवान राम ने अपने छोटे भाई लक्ष्मण, परम भक्त हनुमान एवं वानरी सेना के साथ माता सीता को छुड़ाने के लिए रावण के साथ युद्ध किया था। यह युद्ध कई दिनों तक लगातार चलता रहा। तब भगवान राम ने समुद्र तट पर नौ दिनों तक आदिशक्ति दुर्गा की उपासना की, तथा दसवें दिन अर्थात दशमी को रावण का वध किया था। तभी से दशहरा से पहले नवरात्रि मनाई जाती है। नवरात्रि में नौ दिनों तक अत्यंत ही श्रद्धा एवं भक्ति के साथ मां दुर्गा की पूजा की जाती है। दशमी के दिन रावण को हराकर विजय प्राप्त करने के उपलक्ष्य में विजयदशमी का पर्व मनाया जाता है। यह पर्व बुराई पर अच्छाई की जीत की खुशी में मनाया जाता है।

सवाल– विजय दशमी को दशहरा क्यों कहा जाता है ?

जवाब– प्राचीन काल से ही अश्विन माह के शुक्ल पक्ष की दशमी को विजयदशमी का पर्व मनाया जाता रहा है। जब भगवान श्री राम ने इसी दिन दशानन रावण का वध किया, तब इस दिन को दस मुख वाले रावण को हराने के कारण दशहरा कहा जाने लगा। रावण के दस मुखों कों दस पापों– काम, क्रोध, लोभ, मोह, हिंसा, आलस्य, झूठ, अहंकार, मद एवं चोरी–का सूचक माना जाता है। इन सभी पापों से मुक्ति पाने के लिए हर साल रावण, कुम्भकर्ण और मेघनाद का विशाल पुतला बनाकर उसे जलाया जाता है। यह पर्व व्यक्ति को अपने अंदर की बुराइयों को परित्याग करने की प्रेरणा देता है।

सवाल– विजय दशमी का ऐतिहासिक महत्व क्या है ?

जवाब– विजय दशमी या दशहरा चाहे दुर्गा पूजा के रूप में मनाया जाय अथवा भगवान राम के विजय के रूप में, दोनों ही रूपों में यह शक्ति पूजा व शस्त्र पूजन का पर्व है। हमारी भारतीय संस्कृति सदैव से शौर्य की उपासक रही है। नवरात्रि ऐतिहासिक रूप से राजाओं और राज्य के सैन्य बलों के लिए भी एक प्रमुख अनुष्ठानिक पर्व रहा है। प्राचीन काल में राजा महराजा नवरात्रि में नौ दिनों तक आदिशक्ति जगदम्बा की पूजा करके विजय दशमी के दिन विजय की प्रार्थना कर रण यात्रा के लिए प्रस्थान करते थे। मराठा रत्न छत्रपति शिवाजी ने इसी दिन औरंगजेब के विरुद्ध रण के लिए प्रस्थान करके हिन्दू धर्म का रक्षण किया था। भारतीय इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण हैं, जब हिन्दू राजा इस दिन रण क्षेत्र में विजय हेतु प्रस्थान करते थे।

* समाजशास्त्र विभाग, श्री गणेशराय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, डोभी, जौनपुर, उ0प्र0

सवाल– विजय दशमी का सांस्कृतिक पहलू क्या है ?

जवाब– वास्तव में किसी भी समूह, समुदाय, समाज और राष्ट्र के विकास में उसकी संस्कृति का मुख्य योगदान होता है। संस्कृति ही किसी समाज के मूल्य, लक्ष्य, परंपरा और साझा विश्वासों का प्रतिनिधित्व करती है। हमारे पर्व हमारी भारतीय सांस्कृतिक परंपरा के प्रतीक हैं। इन पर्वों के माध्यम से हमारी संस्कृति की वास्तविक पहचान होती है। जीवन की एकरसता से उबे समाज में पर्व हमारी नीरसता को समाप्त कर नया उत्साह एवं खुशी का रस भरते हैं। पर्व हमारी पारिवारिक, सामाजिक व राष्ट्रीय एकता को प्रगाढ़ बनाने में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। विजय दशमी के दिन विभिन्न स्थानों पर रामलीला का आयोजन किया जाता है। रामलीला में भगवान श्रीराम के सम्पूर्ण जीवन की लीला का मंचन किया जाता है। इसमें बाल्यकाल से लेकर रावण युद्ध और अयोध्या वापसी तक का चित्रण अत्यंत ही जीवंत एवं मनमोहक अंदाज में प्रस्तुत किया जाता है। जब कभी भी रामलीला की चर्चा होती है, तो बनारस के रामनगर की रामलीला अवश्य याद आती है। यहॉ रामलीला देखने के लिए सुदूर क्षेत्रों से लोग आते हैं। इस रामलीला की खास बात यह है कि आज भी इसका मंचन बिना लाइट और साउण्ड के पैटोमैक्स की रोशनी में किया जाता है। रामलीला हमारे देश की सांस्कृतिक धरोहर है। यूनेस्को ने सन् 2008 में राम नगर की रामलीला को सांस्कृतिक घरोहर के रूप में स्वीकार किया है।1

विजय दशमी का पर्व धर्म एवं संस्कृति के साथ–साथ हमारी अर्थव्यवस्था का सबसे प्राचीन पहिया है। यह पर्व अमीर को खर्च करने का और गरीब को नई आमदनी हासिल करने का अवसर देता है। इसके दौरान बड़े पैमाने पर मेले लगते हैं, लोग जमकर खरीदारी करते हैं, घरों को सजाते हैं, नये कपड़े पहनते हैं, नये वाहन खरीदते हैं। यह सभी चाजें सीधे तौर पर अर्थव्यवस्था से जुड़ी हैं। धार्मिक और आर्थिक गतिविधियों के साथ ही इस पर्व में अलग–अलग धर्म के लोगों को एक दूसरे के रीति–रिवाजों और संस्कारों को समझने का अवसर मिलता है। भारत की यही वह संस्कृति है जिसे पूरी दुनियां में सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। हम भारतीयों को किसी भी कीमत पर अपनी संस्कृति के मान–सम्मान की रक्षा करनी चाहिए और इसकी रक्षा का मूल मंत्र है–आपसी भाईचारा और प्रेम। विजय दशमी पर्व **सर्वे भवन्तु सुखिनः** की कामना करने वाली और **बसुधैव कुटुम्बकम्** की भावना रखने वाली भारतीय संस्कृति का एक महत्वपूर्ण भाग है।

सवाल– विजय दशमी पर्व से हमें क्या सीख मिलती है ?

जवाब– विजय दशमी पर्व हमें सिखाती है कि बुराई चाहे कितनी भी शक्तिशाली क्यों न हो, अंत में जीत सत्य और धर्म की ही होती है। रावण का अंत इस बात का साक्षी है कि अधर्म और अहंकार का अंत निश्चित है। यद्यपि हम बाहरी तौर पर रावण का पुतला जलाकर यह साबित तो करते हैं कि बुराई की सदैव हार और सच्चाई की जीत होती है, लेकिन हम अपने अंदर की बुराई को खत्म करने के बारे में नहीं सोचते हैं। आज हमें अपने अंदर के रावण पर विजय प्राप्त करने की आवश्यकता है। जिस प्रकार एक दीपक की रोशनी अंधकार का नाश करने के लिए पर्याप्त होती है, ठीक उसी प्रकार हमारी एक अच्छी सोच भी अपने अंदर के रावण का नाश करने के लिए काफी है। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम का सम्पूर्ण जीवन आदर्श, कर्तव्य, बुद्धि, प्रेम, त्याग और निर्माण की प्रेरणा का संदेश देता है। इन्हीं भावों से व्यक्ति, परिवार, समाज एवं राष्ट उन्नत बनते हैं। यही इस पर्व की मूल चेतना है।

चाहे कोई भी पर्व हो, इसको मनाने के पीछे समाज के उत्थान का कोई न कोई महान उद्देश्य अवश्य निहित होता है। विविध पर्वों पर भोजन, वस्त्र एवं दान देने की परंपरा सामाजिक समरसता का संदेश देती है। वासंतिक नवरात्रि यदि नौ दिन तक धर्म की ध्वजा फहराते हैं तो शारदीय नवरात्रि प्रतिपदा से दसवीं तक। उत्तर भारत में रामलीला तथा पूर्वी भारत में दुर्गा पूजा जन–जीवन को उल्लास और उमंग प्रदान करते हैं। उत्तर का दशहरा, पूरब की दुर्गा पूजा और पश्चिम का महारास, सभी त्योहारों का एक ही संदेश होता है– आपसी सौहार्द एवं मैत्री बनाये रखना। विविध पर्व राष्ट्रीय एकता के रूप में हमारी पहचान हैं। राष्ट्र की एकात्मकता के परिचायक हैं। इन पर्वों से जाति, धर्म एवं क्षेत्र का अंतर समाप्त होता है। व्यवहार में देखा जाय, तो प्रत्येक पर्व के मूल में जन कल्याण की भावना निहित होती है–

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भागभवेत्।।[2]

अर्थात् सभी लोग सुखी हों, सभी रोगमुक्त हों, सभी मंगलमय घटनाओं के साक्षी बनें और किसी को भी दुःख का भागी न बनना पड़े।

प्रस्तुत लेख आल इण्डिया रेडियो आकाशवाणी महमूरगंज, वाराणसी द्वारा अंगनइया कार्यक्रम के तहत बातचीत के रूप में 12 अक्टूबर 2024 को प्रसारित किया गया था। प्रस्तुतकर्ता स्वयं लेखिका है।

संदर्भ –

- https://www.varanasiguru.com
- बृहदारण्यक उपनिषद् 1,4,14

ଔଷ

वेदों में नारी के अधिकारों का विश्लेषण

डॉ. रजनीकांत राय*

मुख्य शब्दावली :– अधिकार, अनुष्ठान, प्रणयन, आश्रम, ब्रह्मचर्य, होता, गाता, उद्गाता, अध्वर्यु।

परिचय :–

वैदिक समाज के अध्ययन से ज्ञात होता है कि भारतीय सामाजिक व्यवस्था में स्त्रियों का स्थान प्राचीन समय से ही आदर्शात्मक और मर्यादायुक्त था उनके प्रति समाज की स्वाभाविक निष्ठा और श्रद्धा थी। कन्या पत्नी के रूप में तथा माता के रूप में वे परिवार तथा समाज में उच्च स्थान प्राप्त था तथा परिवार और समुदाय में उनके द्वारा कन्या, पत्नी, वधू और माता के रूप में किये जाने वाले योगदान का हमेशा महत्व और गौरव रहा है। समाज में उनकी स्थिति पुरूषों के ही समान थी उन्हें विवाह, शिक्षा, सम्पत्ति आदि में अधिकार प्राप्त थे वे अपना उत्थान और आत्मविकास करने के लिए वे स्वतंत्र थी, अधिकार में वैदिक कालीन स्त्री किसी भी प्रकार पुरूषों से कमतर नहीं थी शिक्षा, ज्ञान, यज्ञ, आदि विभिन्न क्षेत्रों में वे स्वच्छन्दतापूर्वक सम्मिलित होती थी। वैदिक समाज में पुत्र की भाँति पुत्रियों को भी आदर व स्नेह प्राप्त था ऋग्वेद में प्रभूत संख्या में बाणों को धारण करने वाले इषुधि की प्रशंसा अनेक पुत्रियों को पिता कहकर की गयी है।[1] शिक्षिता कन्या की प्राप्ति के लिए विशिष्ट अनुष्ठानों का आयोजन किया जाता था।[2] श्रीमद्भागवत के अनुसार सन्तान के अभिलाषी मनु महाराज व उनकी पत्नी ने पुत्रिष्टि यज्ञ के अवसर पर कन्या के लिए याचना की थी।[3] वैदिकयुगीन स्त्री शिक्षा उच्चतम शिखर पर थी उस युग में ऐसी अनेक विदुषी स्त्रियाँ थी, जिन्होने अनेक वैदिक मन्त्रों का प्रणयन किया। लोपामुद्रा, विश्ववारा, सिक्ता, घोषा आदि ऐसी ही पण्डिता स्त्रियाँ थीं। ब्राह्मण साहित्य के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि उस समय स्त्रियाँ वेदाध्ययन एवं यज्ञ–सम्पादन की पूर्ण अधिकारिणीं थी, पुत्र की भाँति पुत्रियों भी उपनयन संस्कार सम्पादित किया जाता था।[4] तथा वह भी ब्रह्मचर्य का पालन करती हुई, विभिन्न विषयों में शिक्षा ग्रहण करती थीं। वैदिकयुगीन छात्राओं के दो वर्ग थे। एक सद्योवधू और दूसरा ब्रह्मवादिनी। सद्योवधू वे छात्राएँ थी जो ब्रह्मचर्य आश्रम के अनन्तर गृहस्थ आश्रम में प्रविष्ट होती थी और ब्रह्मवादिनी वे थी जो ब्रह्मचिंतन में तथा ब्रह्मविषयक व्याख्यान में अपना तपस्वी जीवन व्यतीत करती थी। दर्शन जैसे गूढ और गम्भीर विषय में भी स्त्रियाँ पारंगत थी। याज्ञवल्क्य की पत्नी मैत्रेयी ऐसी ही विख्यात दार्शनिक थी।[5] बृहदारण्यक उपनिषद में उपलब्ध – याज्ञवल्क्य संवाद नामों की की तीक्ष्ण एवं विवादशीला प्रज्ञा का परिचायक है।[6]

तत्कालीन नारियों ने अध्यापन का भी पवित्र कार्य अपनाया और वे गुरूकुल में अध्यापक के पद पर आसीन होकर अध्यापन का कार्य किया करती थीं। महर्षि पाणिनी ने उपाध्याय की सहधर्मिणी तथा स्वयंमेव अध्यापिका होने वाली स्त्रियों के लिए विभिन्न नामों की सृष्टि की है।[7] शनैःशनैः समाज में स्त्री का महत्व इतना अधिक बढ़ा कि उसके बिना पुरुष अपूर्ण समझा गया। उसे पुरूष की अर्धांगिनी माना गया तथा श्री और लक्ष्मी के रूप में उसे मनुष्य के जीवन को सुख और समृद्धि से दीप्त करने वाली कहा गया। आर्य पुरूष नारियों अत्यधिक सम्मान करते थे। वे गृह को नहीं अपितु नारी को ही गृह मानते थे। "जायेदस्त'' और गृहस्थधर्म के पालन में नारी की ही प्रधानता समझते थे।[8] उनके विवाह का प्रयोजन था – नारी के साथ रहकर धर्मानुष्ठान और बह–सम्पादन। नारी के बिना गृह का अस्तित्व कहाँ और गृह के बिना गृहस्थ धर्म का सम्पादन ही कैसे हो सकता है? इस धारणा के अनुसार गृहस्थधर्म की प्रतिष्ठा एकमात्र गृहिणी पर भी ही निर्भर थी। स्त्री सहधर्मिणी श्री. उसी के साथ धार्मिक कृत्यों का अनुष्ठान वस्तुतः सम्पन्न होता था इसलिए अपत्नीक व्यक्ति यज्ञ के अधिकार वंचित था।[9]

विवाहोपरान्त पतिगृह में वधू हो एक विशेष स्थान प्राप्त था। ऋग्वेद के दशम – मण्डल के सूर्या–सूक्त से ज्ञात होता है कि नववधू पतिगृह में सबकी साम्राज्ञी होती थी।[10] वह पति के साथ प्रत्येक कार्य में सहयोग करती थी। ऋग्वेद और अथर्ववेद नारी के अधिकार एवं कर्तव्य की व्याख्या करते हुए कहता है कि– ''पत्नी के साथ बैठकर ज्ञार्थ सुचा लेकर यज्ञ करें।''[11] अन्य मन्त्रों में भी बताया गया है कि ''स्त्री प्रतिदिन

* सहायक प्राध्यापक, श्यामा प्रसाद मुखर्जी राजकीय महाविद्यालय, प्रयागराज।

घृत और सामग्री लेकर प्रातः – सांय यज्ञ करे।''[12] शतपथ ब्राह्मण से स्पष्ट होता है कि उद्गाता का कार्य भी पत्निया ही करती थी। सामूहिक यज्ञों में भी स्त्रियाँ भाग लेती थी।'' इस प्रकार वह पुरूषों की ही तरह समाज की स्थायी और गौरवशाली अंग थी। परिवारिक और सामाजिक सभी कर्तव्यों का वह निष्ठापूर्वक पालन करती थी। वह पति के साथ मिलकर गृह के सभी याज्ञिक कार्य सम्पन्न करती थी।[14] वस्तुतः स्त्री और पुरूष दोनों यज्ञ रूपी रथ के जुड़े हुए दो बैल थे। अतः यज्ञ में उसकी उपस्थिति की अनिवार्यता उसकी पत्नी संज्ञा चरितार्थ करती है तथा उसके दाम्पत्य का ''जाया'' स्वरूप मूर्त करती है। तैत्तिरीय संहिता के अनुसार पति–पत्नी एक दाने की दो दालों की भाँति है, जिनकी संयुक्त स्थिति ही दोनो को पूर्णता प्रदान करती है। गृहणी से रहित गृह अरण्य सदृश कहा गया है। पत्नी को सरस्वती कहा गया है। भार्यासदृश न तो कोई बन्धु है और न ही धर्म संग्रह में सहायक अन्य कोई है।[15]

गृहणी पद के अतिरिक्त वैदिक काल मातृत्व पद का भी गौरव प्रस्तुत करता है 'माता' शब्द पारिवारिक जीवन के लिए अमृत का भण्डार है वह परिवार के लिए त्याग, तप व प्रेम की त्रिवेणी है। माता एवं पुत्र के परस्पर प्रेम के फलस्वरूप ही पारिवारिक जीवन श्रेष्ठ बनता है। माता का पद पिता और गुरु से श्री श्रेष्ठ माना गया है। ऋग्वेद में 'मात' शब्द अन्तरिक्ष, नदी, जल तथा पृथ्वी के अर्थ में भी व्यवहृत है। वैयाकरण मातृ शब्द को "मान्+तृच्" से बनाते है मान का अर्थ है आदर, अतः मातृ शब्द का अर्थ 'आदरणीय' है। यास्क के मत में मातृ का भाव निर्माण करने वाली जननी भी है, परन्तु, आदि युग से लेकर आज तक मानव जिसे असीम श्रद्धा भेट करता रहा है और जिससे अजस्र अक्षय स्नेह प्राप्त करता वह केवल जन्मदात्री नहीं। वह इससे बहुत बड़ी है उसका स्थान स्वर्ग से भी ऊँचा और गुरू से भी अधिक पूज्य है, माता सदा माता ही है।[16]

वाकई शब्द यथा मातर, जनि, जनित्री, अम्बा इत्यादि वेदो में उपलब्ध होते हैं। 'बन्धुर्मे माता पृथिवीमहीयम्' तथा माता भूमि पुत्रौंह पृथिव्या के द्वारा पग–पग पर उसकी स्तुति की गई है। माता पर ही सन्तान को उत्तम मार्ग पर प्रेरित करने का दायित्व है। माँ सन्तान को सद्गुणी बनाकर न केवल परिवार को उन्नत करती है, अपितु राष्ट्र की उन्नति में भी सहायक सिद्ध होती है माता के इन्ही कर्तव्यों को देखते हुए धर्मसूत्रो में उसे उपाध्याय, आचार्य तथा पिता से भी श्रेष्ठ बताया गया है।[17] माता अपने आदर्शो के कारण प्रेम दया एवं सहानुभूति की मूर्ति समझी जाती थी। माता को उसके आदर्शो के कारण ईश्वर की श्रेणी में स्थान दिया गया वैदिक ऋषिओं ने भी प्राकृतिक तत्वों और देवो के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करने में उन्हें माता के ही रूप में देखा है।

ऋग्वेद में वर्णित एक सूक्त के अनुसार दासों द्वारा बाँधकर नदी में फेंक दिये गये दीर्घतमा जब नदी में से सुरक्षित निकल आये तो वह कहते है – ''मातृ स्वरूपिणी नदियों ने मुझे निगला नहीं।''[18] माता के अंक को को सुख एवं शान्ति का आश्रय समझा जाता है बच्चों के क्रन्दन पर माताएँ अन्य कार्य त्यागकर उनकी ओर दौड़ पड़ती थी तथा विपत्ति में सन्तान की हर प्रकार से रक्षा करती थी। एक स्थल पर दिव्य माता–पिता धावापृथिवी से प्रार्थना की गयी है कि ''मधुर वचन वाले, शोभन हाथों वाले यशस्वी माता–पिता प्रत्येक युद्ध में हमारी रक्षा करे।''[19] अन्यत्र वर्णन है कि नदियाँ, पर्वत माता के सामान आकाश एवं पृथिवी के प्रति अपराध करने वाले न हो। मृत व्यक्ति को दफनाते हुए भूमि से प्रार्थना की जाती थी कि हे भूमि! इसे ऐसे आच्छादित कर लो जैसे माता पुत्र को आंचल के ढंक लेती है।[20] स्मृतिकारो ने नारी के त्यागमय जीवन, कष्टों सहिष्णुता, शान्तिमय स्वरूप और उदारता के कारण उसके माता रूप की पृथ्वी से तुलना की है।[21] यदि वसुन्धरा पर कोई ऐसी वस्तु है जो भगवदीय प्रेम की अधिक से अधिक स्मृति दिला सकती है तो वह माँ है।[22]

निष्कर्ष :–

इस प्रकार वैदिक साहित्य में उपलब्ध सन्दर्भों के आधार पर कहा जा सकता है कि जिस प्रकार सारंव्य शास्त्र में प्रकृति और पुरुष द्वारा अन्ध–पगुं के दृष्टान्त से समस्त जगत् का संचालन सिद्ध किया गया है, उसी प्रकार नर–नारी द्वारा लोक–संचालन की प्रक्रिया वेदों में बतलायी गयी है वेदों में इस समस्त संसार को परब्रह्म की यज्ञ शाला माना गया है नर को होता तथा नारी को अग्नि बताया गया है कि जैसे होता समस्त सामग्रियों को संचय करके अग्नि में आहुतियाँ प्रदान करता है और अग्नि इन आहूतियों को होता के उद्देश्यानुसार तत् देवों की सन्निधि में पहुँचा देता है वैसे ही नारी भी नर के पाप–पुण्यात्मक सभी प्रकार के उचित अनुचित कर्मों द्वारा अर्जित किये हुए द्रव्य – रसादियों को यथोचित स्थानों में सुरक्षित रखकर यथोचित रूप से विभक्त कर देती है, अतएव नर संचायक है और नारी विभाजक है इन्ही दोनों के अवलम्बन पर यह संसार स्थित है।

सन्दर्भ :

1. इषृधिः संकाः पृतनाश्र सर्वा.....ऋक्संहिता, 6/75/5
2. अथ य इच्छेद दुहिता में पण्डिता जायेत..... बृहदारण्यक उपनिषद, 6/4/17
3. श्रीमद्भगवत पुराण
4. पुराकल्पे कुमारीणां मौज्जिबन्धमिष्यते, यम स्मृति
5. सा होवाच मैत्रेयी। येनाहं नामृता स्याम् कि तेनाहं कृर्यामिति, बृहदारण्यक उपनिषद, 2/4, 4/5
6. अनतिपृश्न्यां वै देवतामतिपृच्छसि। वही, 3/6/1
7. छात्रादयः शालायाम्, पाणिनीय अच्टाध्यायी, 6/2/47
8. ऋक् संहिता, 3/53/4
9. तैत्तिरीय ब्राह्मण, 2/2/2/6
10. ऋकसंहिता, 10/85/46
11. अधिद्वयोरदधा उक्थ्यं वचो यतस्रुचा। वही, 1/83/3
12. उपयामेति युवतिः सुदक्षं दोषा वस्तेर्हष्यिमति घुताची। वही, 7/1/6
13. तामध्वर्यवे ददाति तप्त.....। शतपथ ब्राह्मण, 14/3/1/33
14. संजनाना उप सीदन्नभिज्ञु पत्नी वन्तों नमस्यं नमस्यन्। ऋक् संहिता, 1/72/5
15. पत्नी परम् मित्रम्। वही, 5/2/1/10
16. कल्याण, नारी अंक, पृ० 140
17. वसिष्ठसूत्र, 13/48
18. यूयं हिष्ठा भिषजोमातृतमा..1 ऋक्संहिता, 6 / 50/6
19. उषसांनकेतवोध्वरिश्रय, वही, 10/78/6
20. वही, 10/18/11
21. मनुस्मृति, 2 / 226
22. तैत्तिरीय संहिता, 1/11/2